★ श्रीगदाधरगौराङ्गौ विजयेताम् ★

भक्तिसारसमुच्चयः

श्रीलोकानन्दाचार्य प्रणीतः
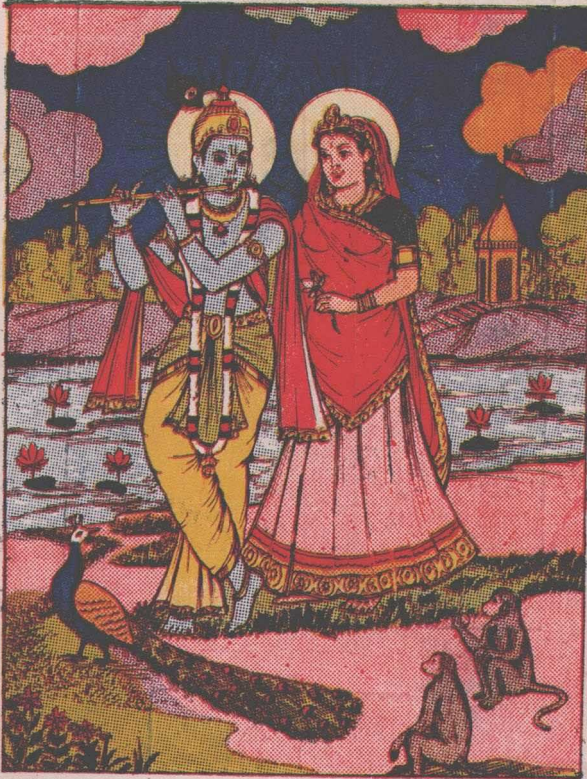
श्रीहरिदासशास्त्री

सङ्गणकसंस्करणं दासाभासेन हरिपार्षददासेन कृतम्

प्रकाशकः–
श्री हरिदासशास्त्री
श्री हरिदास निवास,
कालीदह वृन्दाबन ।

प्रथमसंस्करण ५००

प्रकाशनतिथि
२५-२-७९

प्रकाशनसहायता
मुद्राद्वयम् २.००

मुद्रक :—
श्रीहरिदासशास्त्री
श्री गदाधर गौरहरि प्रेस,
श्री हरिदासनिवास
कालीदह-वृन्दावन
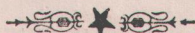
वृन्दावनपुरन्दर रसराजमूर्त्तिधर त्रिभुवनमनविमोहन ।
राधाहृदयबन्धु रासलीलारससिन्धु व्रजवासिगणप्राणधन ।।
जयजय श्रीनन्दनन्दन ।
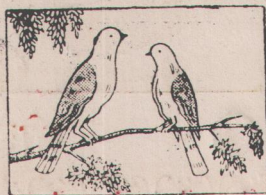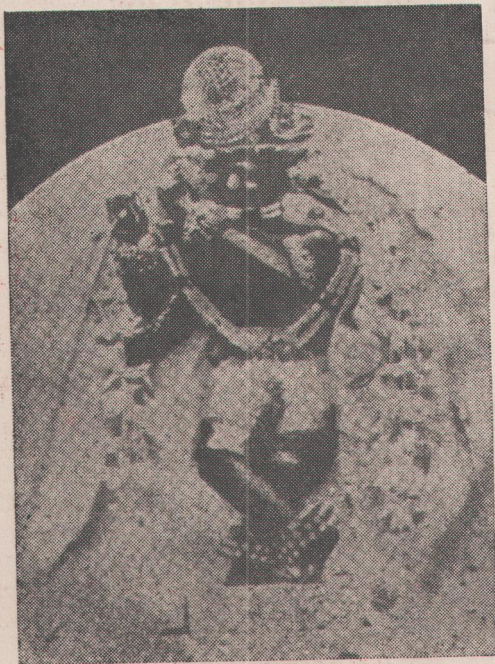
※ श्रीश्री गदाधरगौराङ्गौ विजयेतेतमाम् ※

❀ भक्तिसारसमुच्चयः ❀

श्रीलोकानन्दाचार्य प्रणीतः

श्री धामवृन्दावनीय कालीयह्लदोपकण्ठवास्तव्येन न्याय वैशेषिक शास्त्रि, नव्यन्यायाचार्य काव्य, ब्याकरण, सांख्य, मीमांसा, वेदान्त, तर्क, तर्क, तर्क, वैष्णवदर्शनतीर्थ विद्यारत्नाद्युपाध्यलङ्कृतेन

श्रीहरिदासशास्त्रिणा

सम्पादितश्च ।

★

सद्ग्रन्थ प्रकाशकः

श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस, श्रीहरिदास निबास, कालीदह वृन्दावन

पृष्ठ

प्रकाशनतिथि—श्रीगौर पूर्णिमा। १३-३-७९

प्रकाशनसहायता—३-७५ नं पैं।

विज्ञप्ति :—

जगज्जीवों को सुखी करने के लिए श्रीमन्महाप्रभु श्रीगौराङ्गदेव का अवदान अविस्मरणीय है, मानव सुशिक्षित होने से ही प्राणीवृन्द उल्लास एवं निर्भयसे अवस्थान करने में सक्षम होंगे, इसके लिए ही आपने श्रीमद्भागवतीय व्रजभक्ति का प्रचार प्रसार को एकमात्र उपयोगी माना था, मानव मन इसमें अवगाहन करने से आश्चर्यचकित हो जायेगा।

उक्त अवदान से समाकृष्ट चित्त अन्वर्थनामा श्रीलोकानन्दाचार्य एक अकृत्रिम वरेण्य व्यक्ति थे, आपने लोकशिक्षा के लिए प्रस्तुत श्रीभगवद्भक्तिसार समुच्चय ग्रन्थका प्रणयन किया, इसमें श्रीमद्भागवतादि अनेक ग्रन्थों का सार सङ्कलन पूर्वक भगवदुपासना प्रभृति अतिशय गुरुतर विषय समूहों की सुन्दर मीमांसा सुविन्यस्त होने के कारण ग्रन्थका सार्थक नाम भगवद्भक्तिसार समुच्चय है।

आलोच्यग्रन्थ श्रीभगवदुपासना की विजय घोषणा है। प्रस्तुत ग्रन्थ अष्टम विरचन में पूर्ण है। प्रथम विरचन में,— भजनीय श्रीगौरतत्त्व निर्णय, द्वितीय में,—भक्ति निर्णय, तृतीय में,—गुरुकरण, चतुर्थ में,—नाम माहात्म्य, पञ्चममें,—भागवत लक्षण, षष्ठमें,—महाप्रसादमहिमा, सप्तममें,—कृष्णवैष्णव विमुख निर्णय, एवं अन्तिम अष्टम विरचनमें वैराग्य निरूपण वर्णित हैं।

ग्रन्थकारका परिचय श्रीगोपालदास कृत श्रीनरहरि शाखा निर्णय ग्रन्थमें विशदरूपमें है, उसका संक्षिप्तप्रसङ्ग निम्नोक्त प्रकार है,—

दिग्विजयी नाम कवि ठाकुरेर शाखा।
लोकानन्दाचार्य नाम पण्डिते करि लेखा॥
श्रीगौराङ्गे कहे मोर एइ काट हय।
जे मोरे जिनिवे तारे करिब आश्रय॥
ठाकुरेर स्थाने तेँहो हैला पराजय।
नीलाचले कैलातार चरण आश्रय॥
भक्तिसार समुच्चय ग्रन्थ याँहार।
गौराङ्गेर सिद्धान्त पुराणे व्याख्या तार॥

दिग्बिजयी लोकानन्दाचार्य नीलाचलमें श्रीगौराङ्ग देव के निकट आकर कहे थे,—जो व्यक्ति उनको विचार में परास्त करेगा, लोकानन्द उनका शिष्यत्व ग्रहण करेगा। अभिमानी दिग्विजयी पण्डित को श्रीनरहरिसरकार ठाकुरने शास्त्र विचार से पराजित कर शिष्य किए थे। लोकानन्द एवं लोचनानन्द शिष्य युगल श्रीनरहरि सरकार ठाकुर के दो नेत्र स्वरूप थे। लोकानन्द श्रीगौराङ्ग उपासना के वैधी मार्गोपदेष्टा थे और लोचनानन्द रागमार्ग में गौर भजन का गुप्त तत्त्व प्रकाशक थे।

ग्रन्थकार की उज्ज्वल कीर्त्तिस्वरूप प्रस्तुत अनुपम सुमधुर सिद्धान्तराजि मण्डित भक्तिसार समुच्चय ग्रन्थ चिरकाल मानव समाज को सुतृप्त करते रहेंगे॥

हरिदास शास्त्री

श्रीगौराङ्ग जयन्ती

१३-३-७६

श्री श्री गदाधर गौराङ्गौ विजयेताम् ।
श्री श्री नरहरेः प्राणगौराङ्गः शरणम् ॥

श्री श्री भगवद् भक्तिसार समुच्चयः

अमलकमलवक्त्रं गौरमम्भोज नेत्रं ।
मधुरमधुरहासं चारुकन्दर्पवेशं ॥
सुरनरमुनिवन्द्यं कृष्णचैतन्यचन्द्रं ।
कलितनटनशक्तिं तं भजे प्रेममूर्त्तिम् ॥

अमल कमल के समान मुखकान्ति, कमललोचन मधुर मधुर हास्य, गौरवर्ण, चारु कन्दर्प की भांति वेश भूषा द्वारा विभूषित, सुर-नर मुनिजन वन्दनीय प्रेम विभोर नृत्य परायण प्रेममूर्त्ति श्रीकृष्ण चैतन्यचन्द्र का मैं भजन करूँ।

अन्य तावद् भगवद् भजने गुरुरेवेष्ठ देवो विशेषत स्तच्चरण प्रसादात् सर्वविघ्नोपशम पूर्वकभक्तिप्रवोधकाशेषतत्त्वसिद्धान्त वचनाचरणं प्रकाशत इत्यालोच्य तदाश्रयणमाह ।

श्री भगवद् भजन में श्री गुरुदेव ही इष्टदेव हैं, विशेषकर उनके चरण प्रसाद से ही सकल विघ्नोपशम पूर्वक भक्ति प्रवोधक अशेष विशेष तत्त्व सिद्धान्त का ज्ञान होता है एवं प्रवचन-आचरण के लिए भी साधक में शक्ति आती है इस प्रकार विचारकर ही उनकी वन्दना करता हूँ।

अज्ञानतिमिरान्धोऽहं ज्ञानार्णवसुधाकरम् ।
आश्रये श्रीनरहरिं श्री गुरुं दीनवत्सलम् ।।

मैं अज्ञान तिमिर रूप नेत्र रोग से अन्ध हो गया हूँ । अतः दीन वत्सल श्रीगुरुदेव श्रीनरहरि सरकार ठाकुर के चरणारविन्द की शरण लेता हूँ ।

तदाश्रयणाङ्ग व्यवहरणमाह

आश्रय योग्य पदार्थका वर्णन सदाचार परम्परासे इस प्रकार है।

वन्दे भक्त पद द्वन्द्वं सर्वविघ्न निवारकम् ।
यन्नाम श्रुतिमात्रेण लोकाः सद्यः पुनन्तिच ।।

सकल विघ्नविनायक भक्तपद द्वन्द्व की मैं वन्दना करता हूँ । जिनके नाम ग्रहणमात्र से मानव सद्य पवित्र हो जाते हैं ।

इदानीं परिहार याचन पूर्वकं स्वप्रयोजनमाह ।

क्षम्यतां भगवद्भक्ता जिज्ञासूनां विनोदयते,
लोकानन्देन भगवद् भक्तिसार समुच्चयः ।।

सम्प्रति क्षमा प्रार्थना पूर्वक निजप्रयोजन व्यक्त करते हुए कहते हैं हे भगवद् भक्तगण, मुझे क्षमा करेंगे, में लोकानन्द नामक व्यक्ति जिज्ञासु व्यक्ति के लिए भगवद् भक्तिसार समुच्चय ग्रन्थ का प्रवचन कर रहा हूँ ।

ननु जिज्ञासुभिः पुनः कथमत्रयत्नः कार्य्यो
यावता श्रीभागवतादि नाना पुराणानि सन्ति ।
तेषामवलोकने यत्नवन्तो भविष्यन्ति—इत्यत्राह ।।

अच्छा ! जिज्ञासु व्यक्तिगण प्रस्तुत ग्रन्थावलोकन में प्रयत्न क्यों करेंगे जब तक श्रीमद्भागवतादि अनेकाअनेक पुराण उपलब्ध है उन सब ग्रन्थाध्ययन में ही यत्न करेंगे । इसके उत्तर में कहते हैं—

दुर्वासनासक्ति विमूढ़ बुद्धयो।
नानापुराण श्रवणेक्षणालसाः॥
जिज्ञासवः कृष्णपदारविन्दयोः।
कुर्वन्ति यत्नं परमत्र साधवः॥

दुर्वासिना, विषयासक्ति द्वारा विमूढ़ व्यक्तिगण, नानापुराण श्रवण—अध्ययन मनन के प्रति भी जिनकी लालसा है, एवं साधुगण श्री कृष्णपदारविन्द की जिज्ञासा करते हैं वे सभी व्यक्ति प्रस्तुत ग्रन्थ अध्ययन के लिए एकान्त प्रयत्न करेंगे।

तत्र भक्तिसार समुच्य शब्दस्य अर्थमाचष्टे श्रीभागवतादि नाना पुराणस्थ भक्ति प्रवोधकानि सारभूत पद्य रूप वचनानि शाक पार्थिवादिना मध्यपद लोपः लक्षणया भक्तिसारशब्देनभक्तिवोधकसारपद्यवचनान्युच्यन्ते तेषां समुच्चय एकत्रीकरणं यत्रेत्यन्वयः॥

भक्तिसार समुच्चय शब्द का अर्थ कहते हैं—श्रीभागवतादि नाना पुराणस्थ भक्ति वोधक सारभूत पद्य रूप वचन समूह—भक्तिसार समुच्चय शब्द का अर्थ है, "शाकपार्थिवादिना मध्यपदलोपः" समास के नियम से शाक पार्थिव समास हुआ है, लक्षणसे भक्तिसार शब्द से भक्ति वोधक सार पद्य रूप बचन समूह का कथन है, उन सबका समुच्चय—एकत्रीकरण यहाँ पर है, उसका नाम भक्तिसार समुच्चय है।

अथ भगवद्भक्तिः किन्नामोच्यते आराध्यत्वेन ज्ञानं भक्तिः। आराधना च गौरव प्रीति हेतु क्रिया। गौरवश्च सभयादरे वर्त्तते। प्रीतिः सानुराग स्नेहे वर्त्तते। गौरवेण युक्ता प्रीतिः शाकपार्थिवादि स्तस्या जनकं कर्मेत्यर्थः। तदपि श्रवण

कीर्त्तनादीति वक्ष्यामः। तत्र तावत् श्रेष्ठत्वादाराध्यत्वमुपपन्न मित्येतदेव दर्शयितुमादि पुरुषमाह श्रीशुकवाकचे न।

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृते र्गुणास्तै,
र्युक्तः परः पुरुष एक इहास्यधते।
स्थित्यादये हरिविरिञ्चि हरेति संज्ञाः
श्रेयांसि तत्रखलु सत्त्व तनोर्नृणां स्युः ॥

अस्यार्थः— एकः श्रेष्ठः परः प्रकृतेः परः सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृते र्गुणास्तै र्युक्तः सन् अस्य जगतः स्थित्यादये, स्थिति सृष्टि प्रलय निमित्तं हरि र्विष्णुः विरिञ्चि र्ब्रह्मा हरो महेश इति संज्ञात्रयं धत्ते। एव परः पुरुषः सत्त्वयुक्तः सन् विष्णु संज्ञकः सर्व जीव कल्याण-दायको विष्णु रूपी जायते, एवं सर्वगुणातीतोऽनादि र्यादृशः पर पुरुषो येन वा लभ्यत इत्येतद् दर्शयितुमाह श्रीभगवद्वाकचे न।

पुरुषः स परः पार्थ भक्तचालभ्य स्त्वनन्यया,
यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततं।

सः परः पुरुषः अनन्या निरपेक्षा प्रेमलक्षणा एका भक्ति स्तयैव उपलभ्यः। एवं भक्तचेतसि स्वयमेव प्रकाशत इति वाकचार्थः। एवं तस्यैक भक्ति लभ्यत्वात् यज्ञैः सङ्कीर्त्तन प्रायै रित्यादि वचन प्रामा-ण्येन सङ्कीर्त्तन यज्ञैः गौरकृष्णस्य यजनीयत्वाच्चोक्त वाक्यैक वाक्यैक वाक्तया श्रीचैतन्य एव परः पुरुष इत्युच्चते इति तात्पर्य्यार्थः। ननु तावच्चैतन्य ज्ञान रूप स्वरूप त्वात् एकभक्ति लभ्यत्वं कथं उप-पदयत इत्याशङ्कचाह उत्तर खण्डे वैकुण्ठ वर्णने।

यत्र योगेश्वरः साक्षाद् योगिचिन्त्यो जनार्द्दनः
चैतन्य वपुरास्ते वै सान्द्रानन्दात्मकः प्रभुः ॥

भगवद् भक्ति का स्वरूप क्या है? आराध्य रूप में ज्ञान की भक्ति कही जाती है। गौरव-प्रीति-हेतु क्रिया ही आराधना है, सभय

आदर में गोरव शब्द का प्रयोग होता है। और प्रीति सानुराग स्नेह में, गौरव से युक्ता प्रीति गौरव प्रीति है, शाक पार्थिब समास है, ऐसा प्रीतिजनक कर्म ही भक्ति है। वह भी श्रवण कीर्त्तनादि है, यह आगे कहेंगे। प्रथम सर्वश्रेष्ठ होने के कारण आराध्यत्व का निर्वचन हुआ। उसको प्रदर्शित करने के लिए आदि पुरुष का निर्णय श्री शुक वाक्य द्वारा वर्णन कर रहे हैं। सत्त्व रजः तम प्रकृति के गुण हैं, एक कारणार्णवशायी नारायण जगत् सृष्टि के लिए उन गुणों से युक्त हरि हर बिरिञ्चि नाम धारण करते हैं, उनमें से सत्त्व तनु श्रीविष्णु से ही जगत् जीवों का हित होता है।

श्लोक का अर्थ इस प्रकार है— एक श्रेष्ठ, परप्रकृति से पर सत्त्व रज स्तम ये तीन प्रकृति के गुण हैं, इससे युक्त होकर इस जगत् के सृष्टि स्थितिलय रूप कार्य के लिए ब्रह्मा हर महेश ये तीन संज्ञा प्राप्त होते हैं। वह पर पुरुष सत्त्व युक्त होकर विष्णु संज्ञक सर्व जीव कल्याणदायक विष्णु रूपी होते हैं, इस रीति से रजोयुक्त सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा, तमोयुक्त संहर्त्ता हर होता है। इसप्रकार सर्व गुणातीत अनादि पर पुरुष जिस प्रकार भक्ति द्वारा लभ्य होते हैं उसका प्रदर्शन के लिए श्रीभगवद् वाक्य द्वारा कहते हैं।

जिनमें समस्त भूत हैं और जो सर्वत्र व्याप्त है, वह पुरुष अनन्य भक्ति से ही लभ्य है। वह पर पुरुष अनन्या निरपेक्षा प्रेमलक्षणा, एक भक्ति, उससे ही उपलभ्य है। इस प्रकार भक्त चित्त में स्वयं ही प्रकाशित होते हैं, यह वाक्यार्थ है, एक भक्ति से लभ्य होने के कारण सुधीगण सङ्कीर्त्तन वहुल यज्ञ द्वारा यजन करते हैं इस प्रमाण से सङ्कीर्त्तन यज्ञ द्वारा गौर कृष्ण भजनीय कथन से एक वाक्य प्राप्त श्री चैतन्य ही पर पुरुष कहा जाता है, वाक्यार्थ भी उस प्रकार है।

चैतन्य ज्ञान स्वरूप होने कारण एक भक्ति द्वारा लभ्य कहना कैसे सम्भव होगा ? इस शङ्का के उत्तर में कहते हैं, उत्तर खण्ड में वैकुण्ठ वर्णन में कथित हैं। जहाँ पर योगिगण चिन्तनीय साक्षात् योगेश्वर जनार्द्दन सान्द्रानन्दात्मक प्रभु चैतन्य विग्रह में अवस्थित हैं।

अथ श्रीजगन्नाथाविर्भावे उत्तरे—

यः शेते योगनिद्रान्तामानयन् पुरुषोत्तमः
स मूलं जगतामादि स्तस्य लोमानि यानिवै
तानि कलाद्रुमस्थानि शङ्ख चक्राङ्कितानिवै
तन्मध्यस्थोऽपचयं वृक्ष श्चैतन्याधिष्ठितः पुरा
स्वयमुत् पतितः सिन्धोः सलिले सारपौरुषः
भोगान् भोक्तुं त्रिलोकस्थान् दारुवर्ष्मा जनार्द्दनः ।

श्री जगन्नाथ आविर्भाव प्रसङ्ग में कथित है कि पुरुषोत्तम भगवान् स्वीय स्वरूपानन्द आस्वादन के लिए योगनिन्द्रा के छल से शयन करते है, जगत् के मुल तथा आदि आपही हैं, आपके लोम समूह कल्पबृक्ष रूप धारण करते हैं, एवं शङ्ख चक्राङ्कित होते हैं; उस कल्प वृक्ष के मध्य में यह वृक्ष आदि काल में श्रीचैतन्य द्वारा अधिष्ठित था, वह सार पुरुष दारुमूर्त्ति जनार्द्दन त्रिलोवस्थ भोग समुदाय का भोग करने के लिए स्वेच्छा पूवक स्वयं सिन्धु सलिल में तैरने लगा ।

एतेन चैतन्य नामा श्री विग्रहे भगवानस्तीति वाक्यार्थ इत्येतत् स्पष्टयति बृहन्नारदीये नारद वाक्येन—

व्रह्माविष्णुमहेशादचा यस्यांशालोक साधकाः
तमादिदेवं चिद्रूपं विशुद्धं परमं भजे ।

"चिद्रूपं" इत्यतिगुप्ततमत्वात् चैतन्यस्य चिदिति पर्य्याय-शब्दोल्लेखः रूपशब्दोऽत्र ।

नाम्नि वर्त्तते रूपं मूर्त्यभिधानयोरित्यभिधान प्रामाण्यात् एवं चैतन्यनामानमादिदेवं भज इत्यन्वयः । स एव आदिपुरुषो भगवान् चैतन्यः कलौशचीगर्भे प्रादुर्वभूवेत्येतद् दर्शयितुं ब्रवीति वायुपुराणे

भगवद् वाक्यं—

द्विविजा भूवि जायध्वं जायध्वं भक्तरूपिणः ।
कलौ सङ्कीर्त्तनारम्भे भविष्यामि शचीसूतः ।।

पूर्वोक्त वाक्य से प्रतीति होती है कि श्रीचैतन्य नामक भगवान श्री विग्रह में विद्यमान है, इस वाक्य का स्पष्टीकरण वृहन्नारदीय वाक्य से करते हैं—

जिनके अंश रूप लोकपालक ब्रह्मा विष्णु महेश प्रभृति हैं उस आदि देव विशद्ध परम चिद्रूप का भजन करूँ। यहाँ पर "चिद्रूप" शब्द से अति गुप्ततम होने के हेतु श्रीचैतन्य का पर्य्याय शब्द चिद् रूप नाम से दिया गया है, रूप शब्द का अभिधानिक अर्थ मूर्त्ति एवं अभिधान है, अतः आभिधान अर्थ सप्रमाण है, इस प्रकार चैतन्य नामक आदि देव का मैं भजन करूँ, इस प्रकार वाक्य का अन्वय होता है। वह ही आदि पुरुष भगवान् चैतन्य देव कलियुग में श्री शची गर्भ से प्रादुर्भूत हुए, इस अर्थ को पुष्ट करने के लिए वायु पुराणस्थ भगवद् वाक्य का उल्लेख करते हैं—

हे देवगण आप सब भक्त रूप धारणकर पृथ्वी में अवत्तीर्ण हो जायें, मैं कलियुग के आरम्भ में नाम सङ्कीर्त्तन रसास्वादन के लिए शची सुत रूप में अवत्तीर्ण होऊँगा।

तथा वामन पुराणे—

कलि घोर तमश्छन्नान् सर्वाचार विवर्ज्जितान्
शची गर्भे च सम्भूय तारयिष्यामि नारद।
आनन्दाश्रुकलारोमहर्षपूर्णंतपोधन
सर्वे मामेव द्रक्ष्यन्ति कलौ सन्यासि रूपिणं ।।

हे नारद ! मैं शची गर्भ से उत्पन्न होकर सर्वाचार विवर्ज्जित घोरतमसा आच्छन्न कलिकलुषहत जगजनगण को उद्धार करूँगा।

हे तपोधन ! आनन्दाश्रु रोमाञ्चित वपु आनन्द पूर्ण सन्यासिरूपी मुझको ही सकल लोक दर्शन करेंगे ।

तथा नारदीये—

अहमेव द्विजश्रेष्ठ नित्यं प्रच्छन्नविग्रहः ।
भगवद् भक्तरूपेण लोकान् रक्षामि सर्वदा ॥

उस प्रकार नारदीय पुराण में भी कथित है, हे द्विज श्रेष्ठ ! नित्य प्रच्छन्न विग्रह मैं ही भगवद् भक्त रूप से सर्वदा लोकों की रक्षा करूँगा ।

तथा भविष्ये—

शङ्कर ग्राहग्रस्तंहि भक्तियोगमहं पुनः ।
कलौ सन्यासि रूपेण वितरामि चरामि च ॥

भविष्य पुराण में उक्त है, हे शङ्कर ! कलियुग में ग्राह ग्रस्त भक्ति योग का पुनर्वार वितरण एवं आचरण सन्यासि रूप धारणकर मैं करूँगा ।

तथा शान्ति पर्वणि दानधर्मे—

सन्यासकृत् शमः शान्तो निष्ठा शन्ति परायणः ।

तथा—

सुवर्णो वर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी ॥

तथा मत्स्य पुराणे—

मुण्डो गौरः सुदीर्घाङ्गस्त्रिस्रोतस्तीरसम्भवः ।
दयालुः कीर्त्तनग्राही भविष्यामि कलौ युगे ॥

कलियुग में मुण्डित मस्तक गौरवर्ण सुदीर्घाङ्ग दयालु हरि सङ्कीर्त्तन परायण मैं जाह्नवी तीर में आविर्भूत होऊँगा ।

इति ग्रन्थ वाहुल्यादपरं न लिखितमिति । एवं शची गर्भे प्रादुर्भूतस्य भगवत श्रीकृष्ण चैतन्यस्य तत्त्वार्थं दर्शयितुमाह श्री नरहरि दास वाकयेन—

चैतन्यं भक्ति नैपुण्यं श्रीकृष्णो भगवान् स्वयं ।
द्वयोः प्रकाशादेकत्र कृष्णचैतन्य उच्यते ।।

स्वयं भगवान श्रीकृष्ण एवं भक्ति निपुण श्रीचैतन्य देव इन दोनों के एकत्र प्रकाश हेतु "कृष्ण चैतन्य" शब्द महानुभावगण कहते हैं ।

कृष्ण चैतन्य इत्येतत् नाम्नां मुख्यतमं प्रभोः ।
हेलया सकृदुच्चार्य्यं सर्वनाम फलं लभेत् ।।

तथा तन्नाम महात्म्यं दर्शयितुमाह नारद वाक्येन ब्रह्मरहस्ये—

श्रीकृष्ण चैतन्य नाम माहात्म्य प्रदर्शन के लिए ब्रह्म रहस्य स्थित श्रीनारदोक्ति का प्रदर्शन करते हैं ।

प्रभु श्रीकृष्ण के यावतीय नामों में "कृष्ण चैतन्य" नाम मुख्य-नाम है, इस नाम का हेला से भी एक वार उच्चारण से सकल नाम उच्चारण का फल प्राप्त होगा ।

तथा विष्णु यामले

कृष्ण चैतन्य नाम्ना ये कीर्त्तयन्तिसकृन्नराः ।
नानापराध मुक्तास्ते पुणन्ति सकलं जगत् ।।

विष्णु यामल ग्रन्थ में उक्त है, कि जो सब मानव श्रीकृष्णचैतन्य नाम का कीर्त्तन एक वार भी करते हैं वे सब अनेक-अनेक अपराधों से मुक्त होकर जगत् को पवित्र करते हैं ।

स एव भगवान् कृष्णचैतन्यः संकीर्त्तन यज्ञै राराधनीय इत्येतत्

दर्शयितुमाह वह ही भगवान श्रीकृष्ण चैतन्य संकीर्त्तन रूप यज्ञ द्वारा आराधनीय है इस विधान को दिखाने के लिए कहते हैं—

श्रीभागवते राजोवाच—

कस्मिन् काले स भगवान् किं वर्णः कीदृशो नृभिः।
नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहोच्यतां॥

कर भाजन उवाच—

कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिरित्येषु केशवः।
नाना वर्ण भिदाकारो नानैव विधिनेज्यते॥
कृते शुक्ल श्चतुर्वाहु र्जटिलो वल्कलाम्वरः।
कृष्णाजिनोपवीताक्षान् विभ्रद्दण्डं कमण्डलुं॥
मनुष्यास्तु तदा शान्ता निर्वैराः सुहृदः समाः।
यजन्ते तपसा देवं शमेन च दमेन च॥
हंसः सुपर्णो वैकुण्ठो धर्म्मो योगेश्वरोऽमलः।
ईश्वरः पुरुषोऽव्यक्तः परमात्मेति गीयते॥
त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्वाहु स्त्रिमेखलः।
हिरण्य केशस्त्रय्यात्मा स्त्रु क्स्त्रु वाद्युपलक्षितः॥
तन्तदा मनुजादेवं सर्वदेवमयं हरिं।
यजन्ति विद्यया त्रय्या धर्म्मिष्ठा ब्रह्मवादिनः॥
विष्णुर्यज्ञः पृश्निगर्भः सर्वदेव उरुक्रमः।
वृषाकपि जयन्तश्च उरुगाय इतीर्य्यते॥
द्वापरे भगवान् श्यामः पीतवासा निजायुधः।
श्रीवत्सादिभिरङ्कै श्च लक्षणै रुपलक्षितः॥

तं तथा पुरुषं मर्त्या महाराजोपलक्षणम् ।
यजन्ति वेदतन्त्राभ्यां परं जिज्ञासवो नृप ॥
नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च ।
प्रद्युम्नाया निरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः ॥
नारायणाय ऋषये पुरुषाय महात्मने ।
विश्वेश्वराय विश्वाय सर्वभूतात्मने नमः ॥
इति द्वापर उर्व्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरं ।
नाना तन्त्र विधानेन कलावपि तथाशृणु ॥
कृष्णवर्णं त्विया कृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदं ।
यज्ञैः सङ्कीर्त्तनप्रायै र्यजन्ति हि सुमेधसः ॥

सुमोधसोजनाः कृष्णावर्णं यज्ञैर्यजन्ति तत्पूजां कुर्वन्ति । यज्ञैः कं विशिष्टैः सङ्कीर्त्तन प्रायैः सङ्कीर्त्तनस्वरूपैरित्यर्थः । कृष्णवर्णं इति कृष्ण इति स्वरूपोवर्णो अक्षरे वर्त्तते । एतावता कृष्ण चैतन्य नामान मित्यन्वयः । तं किं विशिष्ठं त्विषा कृष्णं इन्द्रनील मणिवदुज्ज्वलं । अत्र उज्ज्वल शब्देन तेज उच्यते । ग्रन्थाधिक्यात् एवं तेजसः शुक्लत्वं दृश्यते तत् कथं उपपद्यते, उच्यते, तेजसो गौरवर्णत्वं दृश्यते, "रविकर गौर वराम्बरं दधान" इति कर शब्दस्य तेजो वाचकत्वात् ।

यद्वा त्विषा तेजसा अकृष्णं गौरमितियावत् । ननु अकार प्रश्लेषोऽत्र कथं ज्ञायते अकुष्णशब्देन वा गौरः कथं लभ्यतेऽ उच्यते—

कुते शुक्लश्चतुर्वाहु र्जटिलो वल्कलाम्बरः ।
कृष्णाजिनोपवीताक्षान् विभ्रद्दण्डं कमण्डलुं ॥

इत्यनेन सत्येशुक्लवर्ण उक्तः

त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्वाहुस्त्रिमेखलः ।
हिरण्य केशस्त्रय्यात्मा स्त्रुक् स्त्रुवाद्युपलक्षितः ॥

एतेन त्रेता युगे रक्तवर्णो भगवानुक्तः ।

द्वापरे भगवान् श्यामः पीतवासानिजायुधः ।
श्रीवत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणै रूपलक्षितः ।।

इत्यादिभि र्द्वापरे कृष्णवर्णः श्रीकृष्णः उक्तः । ततः पारिशेष्यात् "शुक्ल रक्तस्तथापीत इदानीं कृष्णतां गतः इत्यत्र पीत ग्रहणेन अकारोलभ्यते, तद्वाक्यक वाक्यतया च अकृष्ण शब्देन गौर उच्यते, एवं गौर वर्णस्य अतिगुप्ततमत्वात् शब्द वलेन भगवता व्यास देवेन अकृष्णशब्दो दर्शितः, इति तात्पर्य्यार्थः । पुनः किं भूतः साङ्गेति-अङ्गशब्देन शिव विरिञ्चि शेषादयो गृह्यन्ते । उपाङ्ग शब्देन नारद गरुड़ादयो गृह्यन्ते ।

अस्त्र शब्देन सुदर्शनादयः पार्षदा नन्दोपनन्दादयः, एतैः सार्द्धं गौरवर्णं भगवन्तं श्रीकृष्ण-चैतन्यं यजन्तीत्यन्वयः हिशब्दो निश्चये ।

श्री निमि राजा ने ऋषिगण को पूछा, हे ऋषिगण ! वह भगवान् किस काल में किस प्रकार वर्ण से अवतीर्ण होते हैं, एवं किस किस नाम से किस विधि के अनुसार मनुष्यगण उनकी पूजा करते हैं, आप कृपा पूर्वक वर्णन करें ।

उत्तर में—श्रीकरभाजन जी ने कहा, हे राजन् ! सत्य त्रेता, द्वापर, कलि ये चारों युग में केशव नानावर्ण, नाना नाम, एवं अनेक आकार से अवतीर्ण होकर नाना विध-विधि द्वारा उपासित होते हैं ।

सत्य युग में शुक्लवर्ण; चतुर्वाहु, जटिल, बल्कल वसन, दण्ड कमंडलु, कृष्णसार मृगचर्म, यज्ञसूत्र माला विभूषित ब्रह्मचारी वेश में अवतीर्ण होते हैं ।

उस समय मनुष्य शान्त, निर्वैर सुहृद, समदर्शी होकर तपस्या एवं शम दमादि साधनों के द्वारा श्रीभगवान् की आराधना करते है । एवं हंस, सुवर्ण, वैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर, अमल, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त एवं परमात्मा प्रभृति नामावली का कीर्त्तन करते हैं ।

त्रेता युग में रक्तवर्ण, चतुर्वाहु मेखलात्रयधारी पिङ्गलकेश, वेदमयशरीर, स्रुक् स्रुवादि उपलक्षित यज्ञमूर्त्ति रूप में अवतीर्ण होते है।

तव धर्म्मिष्ठ ब्रह्मवादी मनुष्यगण सर्वदेवमय हरि की त्रयो विद्या अर्थात् वेद त्रयोक्त कर्म द्वारा पूजा करते हैं, एवं विष्णु, यज्ञ, पृथ्वि गर्भ, सर्वदेव, उरु क्रम, वृषाकपि, जयन्त एवं उरु गाय नाम का कीर्त्तन करते हैं।

द्वापर युग में भगवान् अतसी कुसुम की भांति श्याम वर्ण, पीत वसन चक्रादि आयुधधारी श्री वत्सचिह्न से चिह्नित एवं कौस्तुभ भूषित होकर अवतीर्ण होते हैं।

हे नृप उस समय ईश्वर तत्त्व ज्ञानेच्छु मनुष्यगण वेद एवं तन्त्रोक्त कर्म्म द्वारा छत्र चामर युक्त महाराजोपलक्षित पुरुष की उपासना करते हैं।

वासुदेव को नमस्कार, सङ्कर्षण को नमस्कार, एवं प्रद्युम्न अनिरुद्ध को नमस्कार, नारायण ऋषि; पुरुष विश्वव्यापी विश्वेश्वर एवं सर्व भूतात्मा को नमस्कार, हे पृथ्वीनाथ ! इस प्रकार सम्वोधन कर द्वापर युग के मनुष्यगण जगदीश्वर की स्तुति करते हैं।

कलियुग में अवत्तीर्ण होकर जिस रूप में नाना तन्त्र विधान द्वारा पूजित होते हैं, उसको कहता हूँ श्रवण करो।

कृष्ण वर्ण तथा इन्द्रनीलमणि ज्योति विशिष्ट एवं साङ्ग, उपाङ्ग, अस्त्र, पार्षद सहित भगवान् अवतीर्ण होते हैं। उस समय विवेकी मनुष्यगण सङ्कीर्त्तन रूप यज्ञ द्वारा उनकी अर्च्चना करते हैं, एवं इस प्रकार स्तव करते हैं, हे प्रणतपाल ! हे महापुरुष ! ध्यान योग्य, इन्द्रिय कुटुम्व प्रभृति का तिरस्कार का नाशक अभीष्ट पूरक, गङ्गादि तीर्थ का आश्रय, शिव ब्रह्मा द्वारा स्तुत, आश्रय योग्य सुख स्वरूप, भक्तजनों के दुःख नाशन, एवं भव समुद्र की तरणी स्वरूप आपके चरणारविन्द की वन्दना करता हूँ।

हे महापुरुष ! हे धर्म्मिष्ठ आपने देव वाञ्छित दुस्त्यज राज्य लक्ष्मी का परित्याग कर आर्य के वाक्यानुसार अरण्य गमन किया था, एवं प्रियतमा दयिता अभिलषित मायामृग के पश्चात्-पश्चात् धावित हुआ था, अतएव आपके चरणार विन्द की वन्दना करता हूँ। हे राजन् ! इस प्रकार युग के अनुरूप नाम रूप द्वारा युगानुवर्ती मनुष्य गण सर्व कल्याण के ईश्वर श्रीहरि की पूजा करते हैं।

सारग्राही, गुणज्ञ, श्रेष्ठ जनगण ही कलियुग का आश्रय लेते हैं, कारण जिस कलियुग में केवल नाम सङ्कीर्त्तन से ही समुदाय स्वार्थ लाभ होता है।

संसार में भ्रमण कारी देहियों के लिए इसको छोड़कर अन्य परमलाभ और कुछ भी नहीं हो सकता है। कारण—इस युग में सङ्कीर्त्तन से ही परम शान्ति लाभ होता है, तथा संसार दुःख विनष्ट भी होता है।

हे राजन् ! सत्य प्रभृति युग में उत्पन्न प्रजागण कलियुग में जन्म ग्रहण करने के लिए वाञ्छा करते हैं, कलि में उत्पन्न लोक सकल किसी-किसी स्थान में अवश्य ही श्रीनारायण परायण होंगे। किन्तु महाराज ! द्रविड़ देश में भूरि-भूरि नारायण परायण लोक जन्म ग्रहण करेंगे,जिस द्रविड़ प्रदेश में ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी कावेरी एवं महापुण्याप्रतीची नदी विद्यमान हैं।

हे मनुजेश्वर ! जो मनुष्यगण ये सब नदी के जल का पान करेंगे, वे सब निर्म्मल चित्त होकर प्रायशः श्रीभगवान् वासुदेव के भक्त होंगे।

हे राजन् ! जो जन कृत्याकृत्य का परित्याग कर सम्यक् प्रयत्न से शरण्य मुकुन्द की शरण ग्रहण करता है, वह देवता, ऋषि, भूत, मनुष्य पितृलोक का किङ्कर नहीं होता है, उन सबके निकट ऋणी नहीं होता है, अतएव हरिभक्ति परायण व्यक्तियोंके विधि निषेध निवृत्ति होने के कारण भक्ति के द्वारा ही वे सव कृत कृत्य हो जाते हैं।

सुमेधा जनगण कृष्ण वर्ण को यज्ञ द्वारा यजन करते हैं, अर्थात् उनकी पूजा करते हैं, किस प्रकार यज्ञ से सङ्कीर्त्तन प्राय सङ्कीर्त्तन स्वरूप यज्ञ द्वारा उनकी पूजा करते हैं, कृष्ण वर्ण शब्द का अर्थ— "कृष्ण" स्वरूप वर्ण अक्षर जिनके नाम में हैं, इससे कृष्ण चैतन्य नाम का संकेत आता है, वह किस प्रकार हैं, त्विषा कान्ति से कृष्ण इन्द्र-नीलमणि तुल्य उज्ज्वल। यहाँ पर उज्ज्वल शब्द से तेज कहा जाता है। इस प्रकार तेज का शुक्लवर्ण देखने में आता है। अतः प्रकृत में कैसे सम्भव होगा—उत्तर में कहते हैं, तेज का गौर वर्णत्व देखने आता हैं, रविकर गौर वराम्वरं दधाने- यहाँ पर कर शब्द "तेज" अर्थ का प्रकाशक है।

अथवा त्विषा कान्ति के द्वारा अकृष्ण गौर वर्ण इस प्रकार जानना होगा। अकार का प्रश्लेष यहाँ पर है, इसका परिज्ञान कैसे होगा ? अकृष्ण शब्द से गौर अर्थ का लाभ भी कैसे होगा ? इसके उत्तर में कहते हैं, सत्ययुग में शुक्ल भगवान्–चतुर्वाहु जटिल, वल्क-लाम्वर कृष्णजिनोपवीत अक्षमाला एवं दण्ड कमण्डलु धारण करते हैं, इस प्रमाण से सत्ययुग में शुक्लवर्ण उक्त हुआ है, त्रेता युग में वह भगवान् रक्तवर्ण, चतुर्वाहु त्रिमेखल हिरण्यकेश वेदात्मा स्रुंक् स्रुवादि के द्वारा शोभित होते हैं। इससे त्रेतायुग में रक्तवर्ण भगवान् का विवरण आता है, द्वापर में भगवान् श्याम वर्ण, पीतवसन निज आयुधों से सुसज्जित श्रीवत्सादि चिह्न से परि शोभित होते हैं।

इस प्रमाण से द्वापर में कृष्णवर्ण श्रीकृष्ण का विवरण कहा गया है, अनन्तर पारिशेष्य न्याय से शुक्ल रक्त स्तथापीत इदानीं कृष्णतां गतः यहाँ पर पीत शब्द ग्रहण से अकार का ग्रहण हुआ है, एक वाक्य स्थापन के लिए ही अकृष्ण शब्द से भी "गौर" कहा गया है, इस प्रकार गौर वर्ण अति गुप्त होने के कारण शब्द के छल से भगवान् व्यास देव ने अकृष्ण शब्द का प्रयोग किया है। यह इसका तात्पर्य्यार्थ है। पुनर्वार आप किस प्रकार हैं ? उत्तर में कहते हैं—

साङ्गोपाङ्ग अस्त्रपार्षद युक्त हैं, अङ्ग शब्द से शिव विरिञ्चि प्रभृति का उल्लेख हुआ है, उपाङ्ग शब्द से नारद गरुड़ादिका ग्रहण हुआ है, अस्त्र शब्द से सुदर्शन प्रभृति, पार्षद नन्द उपनन्द प्रभृति इन सबके साथ गौर वर्ण भगवान् को बिवेकी व्यक्तिगण यजन करते हैं, हि शब्द का अर्थ निश्चय होता है।

तथाच यजन विधौ श्रीकृष्णस्य स्वरूपमाह, यजन प्रकरण में श्रीकृष्ण का स्वरूप निर्णय करते है।

श्रीमन्मौक्तिकदामवद्धचिकुरं सुस्मेरचन्द्राननं।
श्रीखण्डागुरुचारुचित्रबसन–स्रगदिव्यभूषाञ्चितं॥
नृत्यावेशरसानुमोदमधुरं कन्दर्पवेशोज्ज्वलं।
चैतन्यकनकद्युतिं निजजनैः संसेव्यमानं भजे॥

अपरं यजनानुष्ठानं ग्रन्थगौरवभयात् न लिखितमिति।

मधुरस्मितहास्य से वदनकमल परिशोभित हैं, अनुपम मुक्ता मालाओं से चिकुर मनोहर रूपसे बद्ध हैं, श्री अङ्ग श्री खण्ड अगुरु चन्दनों से लिप्त हैं, मनोरम विचित्र वसन दिव्य माला, एवं भूषा से सुसज्जित हैं। नृत्य के आवेश में स्थित, भक्ति रसास्वाद में विभोर, कन्दर्प के समान उज्ज्वल केश से समुज्ज्वल, निज जनों के द्वारा परि सेवित कनकद्युति श्री गौराङ्गदेव को आराधना करता हूँ। ग्रन्थ विस्तार के भय से अपर यजनानुष्ठान यहाँ पर नहीं कहा गया।

तत्र यजनाङ्गभूत नमस्कार माह द्वाभ्यां—

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं।
तीर्थास्पदं शिव विरिञ्चिनुतं शरण्यं॥
भृत्यार्त्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं।
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

हे महापुरुष! महांश्चासौ पुरुषश्चेति महापुरुषः सर्वेषां श्रेष्ठ

इत्यर्थः, हे प्रणतपाल ! प्रणतान् पालयतीति प्रणतपाल ते तव चरणारविन्दं वन्दे-प्रणमामि, किं विशिष्टं सदा ध्येयं सर्वैः सदा चिन्तनीयमिति,

हे महापुरुष ! सर्वश्रेष्ठ ! हे प्रणतपाल ! प्रणतजन प्रतिपालक तुम्हारे चरणारविन्दों को में प्रणाम करता हूँ, वह चरणारविन्द सदा सर्वजन द्वारा सदा चिन्तनीय हैं। एवं

त्यक्त्वा सुदुस्त्यज सुरेप्सित राज्य लक्ष्मीं
धर्म्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यं,
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावत्
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ।

हे धर्म्मिष्ठ ! सर्वयुग धर्म प्रकाशक ! हे आर्य्य ! सर्व सदाचार प्रवर्त्तक, भवान् वचसा वाङ्मात्रेणैव अनायास साध्येनेति यावत्, यत् यस्मात् अरण्यं दुर्वासनाबद्ध संसारवहिर्भूततामगात् किं कृत्वा सुदुस्त्यज सुरेप्सित राज्य लक्ष्मीं त्यक्त्वा सर्वैरतिशयेन दुस्त्यजं देवानामीप्सितं प्रार्थनीयं राज्यं त्रैलोक्यं तेषामधिष्ठात्री देवी लक्ष्मीः तां तन्नाम्नीं स्त्रियं दयिता प्रेमलक्षणा भक्ति स्तया नाशयितु मीप्सितं मायामृगं मायैव मृगस्तं अन्वधावत् दूरीकृतवान् तत् तस्मात् हे महापुरुष ते चरणारविन्दं वंदे इति।

हे धर्म्मिष्ठ ! हे सर्व युग धर्म प्रकाशक हे आर्य्य ! सदाचार प्रवर्त्तक, आपने वचन मात्र से ही अनायास ही अरण्य दुर्वासनाबद्ध संसार वहिर्भूतताको प्राप्त किया, किसके वाद— सुदुस्त्यज सुरेप्सित राज्य लक्ष्मी का परित्याग कर, जिसको सब लोक अतिक्लेश पुर्वक भी छोड़ नही सकते है, एवं देवगण भी जिसकी अनुकम्पा को चाहते हैं, त्रिलोक के राज्य, उनकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी, इस नाम की पत्नी, दयिता प्रेम लक्षणा भक्ति, उससे नाश करवाने की अभिलाषी होकर माया से जो मृग वनाया उसको विदूरित किया; अतः हे महा पुरुष आपके चरणारविन्द की मैं वन्दना करता हूँ।

किञ्च-और भी—

कलेः प्रथमसान्ध्यायां लक्ष्मीकान्तो भविष्यति ।
दारु ब्रह्म समीपस्थः सन्न्यासी गौरविग्रहः ।।

लक्ष्मीकान्त हरि कलि की प्रथम संध्या में दारु विग्रह के समीप में गौर विग्रह सन्यासी होगा।

गरुड़ पुराणे पद्म पुराणे च ।

नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः ।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनाम्निनोः ।।
मास्वत् कल्पद्रुमूलोद्गतकमललसत् कर्णिका संस्थितो य ।
स्तच्छाखालम्बिपद्मोदरबिसवदसंख्यातरत्नाभिषिक्तः ।।
हेमाभः स्वप्रभाभिस्त्रिभुवनमखिलं भासयन्वासुदेवः ।
पायान्नः पापसादो नवनवनीतामृताशीवशीशः ।।

कृष्ण नाम चिन्तामणि स्वरूप अर्थात् वाञ्छितार्थ फलप्रद हैं, एवं चैतन्य रस विग्रह है, श्री नाम नामी श्रीकृष्ण से सम्पूर्ण अभिन्न होने के कारण पूर्ण–शुद्ध-प्रकृत्यतीत, नित्य मुक्त स्वरूप हैं ।

नवीन–नवीन नवनीत भोजनरत, एवं नवनीत मुग्ध पायसान्न परितृप्त भगवान् वासुदेव हम सबकी रक्षा करें, प्रकाश बहुल कल्प-द्रुम के मूल में स्थित स्वर्ण मन्दिरस्थ कर्णिकारस्थ रत्न सिंहासन में विराजित, निकुञ्जराजि के द्वारा सशोभित मणिमाणिक्य खचित सुवर्ण-वर्ण मन्दिर स्व प्रभा से चतुर्दिक को उद्भासित कर रहे हैं ।

एवं विशेषतः श्रीकृष्ण चैतन्योत्कर्षमाह श्रीनरहरिदास वाक्येन—

एको देवः सहज करुणः श्रीकलौ द्वापरे वा
गौरः श्यामः प्रकृतिमधुरोयद्यपिलकेशहन्ता ।

तत्राप्युच्चैर्मधुर मधुर प्रेम विस्तार कारी ।
प्रेमारामः प्रकट करुणः श्रीशचीनन्दनोऽयम् ॥

असौ भगवान् द्वापरे श्याम रूपेण गोपीजनोद्धवादौ प्रेम कारुण्यादिकं प्रकाशितवान् । कलियुगे तावत् स्वयमेवाब्रह्मस्तम्ब पर्य्यन्तं सर्वप्राणिषु प्रेमकारुण्यादि प्रकाशक इति प्रकट गुणोदार चरितत्त्वमुपपन्नमित्यर्थः, अतएवात्रावतारे प्रेमलोभात् सर्वावतार सेवका अवतीर्णा इति तत्त्ववेदिभिर्विज्ञेयम् । अतएव सर्वैः कलियुगे जन्म प्रार्थित इत्याह—

कृतातिषु प्रजा राजन् कलाविच्छन्ति सम्भवं ।
कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥

सहज करुण एक प्रकृति मधुर प्रभु कलि एवं द्वापर में गौर-श्याम रूप में अवतीर्ण होकर अखिल जीव जगत् के क्लेश नाश करते हैं, उनमें से स्वप्रकाश प्रकट करुण प्रेमाराम निर्मल मधुर प्रेम विस्तार-कारी यह शचीनन्दन ही हैं।

वह भगवान द्वापर युग में श्याम रूप में गोपीजन एवं उद्धव प्रभृति के प्रतिकारुण्यादि गुणों के प्रकाशक कलियुग मैं किन्तु स्वयं ही आब्रह्म स्तम्ब पर्यन्त समस्त प्राणियों के प्रति प्रेम कारुण्यादि का प्रकाशक हैं, इस प्रकार प्रकट गुणोदार चरित का प्रकटन हुआ है, अतएव इस अवतार में प्रेम के लोभ से सर्वावतार सेवकगण अवतीर्ण हुए हैं, तत्त्वज्ञ व्यक्तिगण इसे जानते हैं। अतएव सकल जनगण कलियुग में जन्म लेना चाहते हैं, इसको कहते हैं— सत्यादियुग की प्रजागण भी इस कलियुग में जन्म लेना चाहते हैं, कलि में जनगण श्रीनारायण परायण होते हैं।

एवं तपोयज्ञ परिचर्य्या संकीर्त्तन स्वरूपज्ञानां चतुर्युग धर्मानां शुक्लरक्तश्यामगौराणामिष्टदेवत्वस्वरसात् संकीर्त्तनस्वरूपस्य

कलियुग यज्ञस्य श्रीकृष्णचैतन्य एवेष्टदेव इति तत्त्वतो ज्ञात्वा य संकीर्त्तनेन श्रीकृष्णचैतन्यमाराधयति तस्य प्रेमभक्तिः सिद्धत्येवान्यथा राधनेन तस्मात् च्युतो भवतीत्यत्र प्रमाणमाह श्रीभगवद्वाक्येन —

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेवच ।

नतु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्चवन्तिते ॥

ये जना यस्य यज्ञस्य यद्रूपोऽहमीश्वर इवि तत्त्वेन ज्ञात्वा तेन यज्ञेन मां भजन्ति तेषां तत् सिद्धत्येवान्यथाराधेन तस्मात् च्यवन्ति इत्यर्थः । तस्मात् सर्वात्मना संकीर्त्तनेन भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्यचन्द्र एवाराधवीय इति वाक्यार्थः । इदानीं प्रकरणार्थं संकलयति—

श्रीकृष्णो भगवान् गौरदेहः श्रीमच्छचीसुतः

अन्ये तस्यावताराश्च विज्ञेयाः शतशः क्रमात् ।

भजनीयः प्रयत्नेन सर्वं सर्वसुखावहः

सर्वेषां बन्धुरात्मा च तथा प्रियतमः प्रभुः ।

यत्र यत्रावतारे च भक्तिः कृष्णे प्रसज्जते ।

यथार्णवे सरिद्याति तस्मात् कृष्णं भज प्रभुं ॥

इति श्री भक्तिसारसमुच्चये भजनीयनिर्णयं नाम प्रथमं विरचनम् ।

इस प्रकार तप, यज्ञ, परिचर्य्या, संकीर्त्तन स्वरूप चर्तुयुग के यज्ञ धर्म के इष्ट देव श्याम रक्त, श्याम गौर हैं, अतएव संकीर्त्तन स्वरूप कलियुग यज्ञ के इष्ट देव श्रीकृष्ण-चैतन्य ही हैं, इस प्रकार तत्त्व से जानकर जो व्यक्ति संकीर्त्तन द्वारा श्रीकृष्ण चैतन्यदेव की आराधना करता है, उसके लिए श्रीकृष्ण प्रेम भक्ति सुनिश्चित है, इससे अन्य प्रकार आराधना करने पर प्रेम भक्ति से अवश्य ही वञ्चित होगा, भगवद् वाक्य द्वारा उक्तार्थ प्रमाणित करते हैं ।

मैं ही सर्व यज्ञों का भोक्ता एवं प्रभु हूँ, इस प्रकार तत्त्व से जो नहीं जानता है, वह स्खलित होता है, जो भी जन जिस यज्ञ का जो

ईश्वर जिस प्रकार शास्त्र में निर्दिष्ट हैं, उसे यथार्थ रूप से जानकर उस यज्ञ से ही यदि मुझको भजन करता है, तो उन सबको वाञ्छितार्थ मिल जाता है, इसके विपरीत करने पर उन्ही कर्म के द्वारा उसका पतन होता है, यह अर्थ आता है, अतः एकान्त भाव से संकीर्त्तन द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्यचन्द्र ही आराधनीय हैं, वाक्यार्थ इस प्रकार ही हैं।

सम्प्रति प्रकरणार्थ का सङ्कलन करते हैं—

भगवान् श्रीकृष्ण गौर देह श्री शचीशूत हैं। उनके अवतार असंख्य हैं, क्रम से जानना होगा। यत्न पूर्वक सर्व सुखद श्री गौर प्रभु भजनीय हैं, आप सबके बन्धु आत्मा प्रियतम एवं प्रभु हैं, जिस-जिस अवतारस्थ भजन से भक्ति श्रीकृष्ण चरणारविन्दों में होती है, जैसे सकल सरित समुद्र में मिलती हैं, वैसे वे सभी भक्ति श्रीकृष्ण चरणारविन्द भजन से होती हैं, अतएव प्रभु श्रीकृष्ण का भजन करो।

।। श्रीभक्तिसार समुच्चय में भजनीयनिर्णय नाम प्रथम विरचन ।।

—※—

।। अथ तावद् भक्ति विशेषनिर्णयंवक्तु विरचनमारभते ।।

तत्र भक्ति विशेषाणां नव विधानां प्राधान्यमभिप्रेत्य तानेव दर्शयितुं प्रथमं प्रह्लाद वचनमाह द्वाभ्याम्—

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्ति श्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ।।

श्रवणं तन्नामादि शब्दानां स्वोक्तानां परोक्तानां वा श्रोत्रेण ग्रहणम्। कीर्त्तनं–तेषां स्वयमुच्चारणम्। स्मरणम्– तन्नाम रूपादीनां चिन्तनं पाद सेवनं परिचर्य्या प्रतिमादौ। साधारणं अर्च्चनं पूजा, जलादिषु। वन्दनं तदात्मकेन मनसा नमस्कारः। दास्यम्– कर्मार्पणं

सख्यं तद्विश्वासादि। आत्म निवेदनं– देहसमर्पणं, यथा विक्रीतस्य गवाश्वादे र्भरण पालनादि चिन्ता न क्रियते तथा देहं तस्मै समर्प्य तच्चिन्त्यावर्ज्जनमिति । नव लक्षणानि यस्याः सात्त्वव्यवहितेनचेद् भगवति भक्तिः क्रियते साचार्पितैव सती नतु कृता पश्चात् समर्प्यते, तदुत्तममधीतं मन्ये, तस्माद् गुरोरधीतं शिक्षितं वा न किञ्चिदस्तीति भावः तानेव दर्शयितुमाह भगीरथं प्रति श्री यम वाक्येन एकादशभिः—

यश्चन्यस्य विनाशार्थं भजते श्रद्धया हरिः
शृणुष्व पृथिवो पाल साभक्ति स्तामसाधमा ।
योऽर्चयेत् कैतवधिया स्वैरिणी स्वपतियथा ॥
नारायणं जगन्नाथं सा वै तामस मध्यमा ।
देव पूजा परान् दृष्ट्वा मनुजान् योऽर्चयेद्धरिं ।
शृगुष्व पृथिवोपाल सा भक्ति तामसोत्तमा ॥
धनधान्यादिकं वस्तु प्रार्थयन्नर्चयेद्धरिं ।
श्रद्धया परयाविष्टः सा भक्ती राजसाधमा ॥
यः सर्वलोक विख्यातां कीर्त्तिमुद्दिश्यमाधवं ।
अर्च्चयेत् परया भक्त्या स वै राजसमध्यमा ॥
सालोक्यादि पदं यस्तु समुद्दिश्याच्चर्चयेद्धरिं ।
विज्ञेया पृथिवीपाल सा भक्ती राजसोत्तमा ॥
यस्तु स्वकृतपापानां क्षमार्थं पूजयेद्धरिं ।
श्रद्धया परया राजन् सा भक्तिः सात्त्विकाधमा ॥
हरेरिदं प्रियमिति शुश्रूषां कुरुते नरः ।
जनेषु श्रद्धयायुक्तो भक्ति सात्त्विकमध्यमा ॥
विधिबुद्धयाच्चर्चयेद् यस्तु दासवच्चक्रपाणिनं ।

भक्तीनां प्रवराज्ञेया सा भक्तिः सात्त्विकोत्तमा ॥

नारायणस्य महिमा किञ्चिच्छ्रुत्वा च योनरः

तन्मयत्वेन संतुष्टः सा भक्तिः सात्त्विकोत्तमा ॥

एवं दशविधाभक्तिः संसारक्लेशहारिणी ।

तत्रापि सात्त्विकी भक्तिः सर्व कर्मफलप्रदा ॥

भक्ति समुदाय के मध्य में नवविध भक्ति का ही प्राधान्य मानकर उनका प्रदर्शन के लिए कहते हैं, श्रीविष्णु का श्रवण, कीर्त्तन स्मरण–पाद सेवन, अर्च्चन, वन्दन दास्य सख्य आत्म निवेदन ये नव विध भक्ति यदि आत्मार्पण पूर्वक की जाय तो उत्तम अध्ययन हैं। यह प्रह्लादजी का मत है।

श्रवण—निज कथित–अथवा दूसरे के द्वारा कथित शब्द समुदाय का श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा ग्रहण करना है। कीर्त्तन—उन सब शब्दों का स्वयमुच्चारण है। स्मरण–उनके नाम रूप प्रभृति का चिन्तन है। पाद सेवन—प्रतिमा प्रभृति की परिचर्य्या है। पूजा—साधारण अर्चन, जल आदि से। वन्दन––एकाग्र मन होकर मन से श्रीविष्णु का महत्व स्वीकारणा नमस्कार है। दास्य––कर्मार्पण, सख्य, एवं विश्वास प्रभृति। आत्म निवेदन––देह समर्पण, जैसे विक्रीत गो–अश्व आदि के मरण पालन पोषण आदि की चिन्ता वेचने वाला नहीं करता है, वैसे देह श्रीहरि अथवा श्रीगुरु को प्रदान कर पालनादि चिन्ता से विरत हो जाना। ये नव लक्षणा भक्ति व्यवधान रहित होना आवश्यक है, एवं अर्पितात्मा होकर ही नतु करने के बाद अर्पण, श्रीविष्णु के प्रति यह भक्ति-उत्तमा कहलायेगी, एवं उत्तम अध्ययन शब्द का प्रयोग भी होगा, इसमें गुरु से पढ़े अथवा न पढ़े इसका कोई अभिप्राय नहीं है।

उन सब बिवरण को प्रकाशित करने के लिए कहते हैं––
भगीरथ के प्रति श्री यमराज का वाक्य इस प्रकार है––इस प्रसङ्ग

में एकादश श्लोक हैं—

जो जन दूसरे का विनाश हो इसलिये श्रीहरि का भजन करता है— हे पृथिवीपाल सुनो ! वह भक्ति तामस अधम है।

मन मुखी महिला जैसे कपट पूर्वक अपनी पति की सेवा करती है वैसे ही मन मुखी होकर जो नारायण की अर्च्चना करता वह मध्यम तामस भक्ति है।

दूसरे की देखा-देखि जो-जन श्रीहरि की पूजा करना शुरू करता है, पृथिवीपाल सुनो ! वह भक्ति उत्तम तामस भक्ति है।

धन-धान्य रत्न प्रभृति की कामना से जो-जन श्रीहरि की अर्च्चना करता है, परम श्रद्धा एवं आवेश के साथ अनुष्ठित होने पर भी वह भक्ति अधम राजस होती है।

जो व्यक्ति सकल लोक विख्यात कीर्त्ति लाभ के लिए एकान्त भक्ति से श्रीमाधव की अर्च्चना करता है, उसको मध्यम राजस ही जानना।

सालोक्य प्रभृति की इच्छा से जो जन श्रीहरि की अर्च्चना करता है, वह भक्ति, पृथिवीपाल ! उत्तम राजस है।

निज कृत पापों की क्षमा के लिए जो व्यक्ति परम श्रद्धा पूर्वक हरि की पूजा करता हैं— हे राजन् ! वह भक्ति अधम सात्त्विक है।

यह कार्य श्रीहति का प्रिय है, इस प्रकार बुद्धि से श्रद्धान्वित होकर जो व्यक्ति श्रीहरि की शुश्रूषा करता है, वह मध्यम सात्त्विक है।

विधि वुद्धि से प्रेरित होकर दास की भांति चक्रपाणि की सेवा करता है, तो वह भक्ति श्रेष्ठा भक्ति है, और उत्तम सात्त्विक है।

कुछ ही श्रीनारायण की महिमा को सुनकर तन्मयता से सन्तुष्ट होकर श्री प्रभु की परिचर्य्या करता है, वह भक्ति उत्तम सात्त्विक है।

इस प्रकार दशविधा भक्ति संसार क्लेशहारिणी है, उनमें से सात्त्विकी भक्ति सर्व कर्म फलप्रद है।

एवंसामान्यतोभक्तिलक्षणमुक्त्वा विशेषतो भक्तिः सर्वैरेवालक्ष्येत्याह—

पूजां हसन्ती जपतस्त्रसन्ती
समाधि योगस्य बहिर्भवन्ती ।
आलिङ्गनी क्वापि जने निगूढ़ा
संलक्ष्यते केन च विष्णुर्भक्तिः ।।

सामान्य प्रकार से भक्ति का लक्षण परिज्ञान के लिए कहा गया, विशेष रूपसे भक्ति के सन्दर्भ में इस वात को ध्यान में रखना परम आवश्यक है, भक्ति पूजन को देखकर हँसती रहती है, जप करते देखकर भक्ति डर जाती है, मन एकाग्र कर ध्यान जमाने वाले को देखकर भक्ति दौड़कर वाहर भगकर खड़ी हो जातो है, किसी अज्ञात व्यक्ति बिशेष में यह भक्ति निगूढ़ रूप से आलिङ्गित होकर रहती है, ऐसी विष्णु भक्ति को कोन जान सकता है।

केन विशिष्ट स्वभावेन परम भागवतेन जनेन निगूढ़ा विष्णु भक्ति र्लक्ष्यते नतु सामान्येनेति भावः ।

विशिष्टः स्वभाव सम्पन्न परम भागवत जन द्वारा निगूढ़ा विष्णु भक्ति देखी जाती है, सामान्य जनगण भक्तिको देख ही नहीं पाते हैं,

व्यतिरेकेनिन्दामाह—

हरि भक्ति विहीनस्य दिनान्यायान्ति यान्ति च ।
स लौहकार भस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ।।

भक्ति के अभाव से जन निन्दित हो जाते हैं, उसको कहते हैं—

हरि भक्ति विहीन व्यक्ति के लिए दिन सकल ग्राते जाते रहते हैं, वह व्यक्ति कांँमार की फूंकनी की तरह श्वाँस लेता हुआ भी जीवित नहीं कहलाता है ।

एवं भक्तियोगिनोगरीयस्त्वं दर्शयितुमाह भगवद्वचनेन द्वाभ्यां–

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः
कर्म्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद् योगी भवार्ज्जुन ।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।

श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमोमतः ॥

सर्वेभ्यो योगी अधिकोमतः सम्मतः अत्रपारिशेष्याद् योगि शब्देन भक्ति योगी उच्च्यते, हे अर्ज्जुन ! त्वं योगी भव । एतदेव स्पष्टयन्नाह–योगिनां मध्ये यः श्रद्धावान् मां भजते स मम युक्ततमः योगि श्रेष्ठ इत्यर्थः । श्रद्धा भजनमेव भक्तियोग इति भावः ।

इस प्रकार भक्ति योग की ही श्रेष्ठता है, श्रीभगवद् वचनद्वय के द्वारा उसका प्रतिपादन करते हैं ।

हे अर्जुन ! तुम योगी बनो तपसी से योगी अधिक है, ज्ञानी से भी अधिक है, कर्मि से भी अधिक है, समस्त योगियों के मध्य में एकान्त चित्त से श्रद्धालु होकर जो जन मेरा भजन करता है, वह मेरे मत में युक्ततम है ।

पारिशेष्य न्याय से योगी सबसे श्रेष्ठ है, योगी शब्द से भक्ति योगी जानना होगा । हे अर्जुन ! तुम योगी बनो, इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं— योगियों के मध्य में श्रद्धावान् जो जन मेरा भजन करता है, वह श्रेष्ठ योगी है, श्रद्धा भजन ही भक्ति योग है ।

एवं भक्तेर्दुर्ल्लभत्वं दर्शयन्नुपसंहरति चतुर्भिः—

राजन् पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां
दैवं प्रियः कुलपतिः क्वच किङ्करो वः ।
अस्त्वेवमङ्ग भजतां भगवान् मुकुन्दो
मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्ति योगम् ॥

हे राजन् परीक्षित्, पतिः प्रभुः, गुर्रुहितोपदेष्टा भवतां पाण्डवानां । यदूनां दैव आराध्यः, परन्तु प्रेमरस सहितं भक्तियोगं न ददाति स्म प्रसिद्धौ तस्माद् भक्ति श्रेष्ठा परम दुर्ल्लभत्वात् । ज्ञान योग कर्म योगयोरिति साधूक्तं तस्माद् योगी भवार्ज्जुनेति ।

हे राजन् ! पति-प्रभु, गुरु-हितोपदेष्टा, भवतां पाण्डवों के,

यदुयों के आराध्य हैं, परन्तु प्रेमरस भक्ति का प्रदान नहीं करते हैं, अतः भक्ति ही श्रेष्ठ हैं परम दुर्ल्लभ हैं, ज्ञान योग कर्म योग सुलभ हैं, अतएव अर्ज्जुन भक्ति योगी वनो।

एवं स्पष्टयन्नाह—

अनिमित्ता भागवती भक्तिसिद्धेर्गरोयसी
जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा।

सिद्धे मोक्षादपि, मोक्षस्य सुखस्वरूपत्वेऽपि भक्तौ तदनुभवात् गरीयस्त्वं शर्करा तद् भोजिनोरिव। एवं मोक्षाद् भक्तेर्गरीयस्त्वाद् जीवन्मुत्त्वा अपि भक्ति कुर्वन्तीत्याह--

अनिमित्ता भक्ति मुक्ति से भी श्रेष्ठा है, मोक्ष सुख स्वरूप होने पर भी उसके अनुभव से ही वह श्रेष्ठ प्रतीति होती है, जैसे शर्करा और उसका आस्वादक इस प्रकार मुक्ति से भी भक्ति श्रेष्ठ होने के कारण जीवन मुक्त गरण भी श्रीहरि भक्ति का आचरण करते हैं।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतो गुणो हरिः॥

एवं भक्तेरतिशयसुखानुभवत्वात् जीवन्मुक्ता अपि अहैतुकीं भक्ति कुर्वन्ति॥इतिभावः।

इति भगवद्भक्तिसार समुच्चये भक्तिनिर्णयं नाम द्वितीय विरचनम्।

निर्ग्रन्थ आत्मारामगुनिगण भी उरुक्रम के चरणारविन्द में अहैतुकी भक्ति करते हैं; श्रीहरि ईदृश गुणगण विमण्डित हैं। भक्ति में अतिशय सुखानुभव होने के कारण जीवमुक्त गरण भी अहैतुकी भक्ति करते हैं।

इति श्रीभगवद् भक्तिसार समुच्चय में भक्ति निर्णय नाम द्वितीय विरचन।

—❀—

अथ तावद् भगवद् भजने गुरुरेव प्रधानं कारणमित्येव दर्शयितुमाह— भगवद् वाक्येन।

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्ल्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नमः स्वतेरितं पुमान् भवाब्धि नतरेत् स आत्महा

यः पुमान् भवाब्धि न तरेत् स आत्महा–आत्मघाती। किं कृत्वा नृदेहं प्राप्येति भावः। किं विशिष्टं आद्यं सर्व देहानां श्रेष्ठं सुलभं सुखेन प्राप्तत्वात्, सुदुर्ल्लभं पूर्वकृत नाना कर्म्मभि. प्राप्तव्यत्वात्, प्लवं नौकामिव, गुरुकर्णधारं गुरुः कर्णधारोयत्र तं, अनुकूलेन वायुना मया ईरितं प्रेरितमिति श्रवणकीर्त्तनेत्यादिनेत्यर्थः। तस्माद् भगवद् भजने गुरोः प्रधान कारणत्वात् अविनाशिभाव-सम्बन्धात् तमेवाश्र-येदिति भावः॥

मनुष्य देह प्राप्त कर भी जो जन भवाब्धि का पार न कर लेता है, वह ही आत्म हत्या कारी है, यह मनुष्य देह—सकल देह से श्रेष्ठ हैं, सुलभ हैं, सुख पूर्वक पाया जाता है, सुदुर्ल्लभ भी है, कारण पूर्वकृत अनेक कर्मों से ही यह देह उपलब्ध होता है, यह शरीर भव-सिन्धु पार होने के लिए नौका के समान है, एवं इसमें गुरु कर्णधार नाविक (खेव्वैया) है, मैं अनुकूल पवन श्रवण कीर्त्तन रूपमें सर्वदा रहता हूँ। अतएव श्रीभगवद् भजन में गुरु प्रधान कारण हैं, एवं गुरु के साथ अविनाशिभाव सम्बन्ध होने के कारण श्रीगुरुचरण का ही आश्रय ग्रहण करे।

एवं कीदृशी गुरुरुपासनीय इत्याह भगवद् वाक्येन—

यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान् मत्परः क्वचित्।
मदभिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीत मदात्मकम्॥

यो मामेव अभि सर्वतोभावेन जानातीति मदभिज्ञस्तं। अहमेव आत्मा यस्य सः मदात्मक. तं गुरुं उपासीत आश्रयेदित्यर्थः।

यम प्रभृति का सेवन पुनःपुन करे, नियम सकल का सेवन

मौलिक अनुष्ठान का पोषक रूप से करे। यह विधान मदेकनिष्ठ शरणागण व्यक्ति के लिए है, एवं मदभिज्ञ शान्त, मदात्मक गुरु की उपासना करे।

मदभिज्ञ शब्दका अर्थ—जो जन सर्वतोभाव से मुझको जानता है वह मदात्मक कहलाता है, मदात्मक शब्द का अर्थ है–मैं ही आत्मा प्रिय उपजीव्य हूँ जिसका वह मदात्मक है, इस प्रकार गुरु शिक्षक का आश्रय ग्रहण करे।

एतदेव स्पष्टयन्नाह—

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥

शाब्दे—भगवद् भजन-तत्त्व सिद्धान्ते, परे वेदाख्ये ब्रह्मणि, परे च भजनीये भगवति श्रीकृष्णे निष्णातं परिनिष्ठितं गुरुं प्रपद्येत प्रपन्नो भवेदित्यर्थः। उपशमो वैराग्यमेव आश्रयो यस्य तमित्यर्थः।

अतः उत्तम श्रेय की जिज्ञासु होकर शाब्द-परे-ब्रह्मणि निष्णात-शाब्द-भगवद् भजन-तत्त्व–सिद्धान्त में परे–वेदाख्ये व्रह्ममें, परे च–भजनीय भगवान् श्रीकृष्ण में निष्णात-परिनिष्ठित गुरु की ही शरण में आना आवश्यक है, और गुरु के लिए विशेष लक्षण है- उपशमाश्रय, उपशम वैराग्य-कृष्ण भिन्न सकल वस्तुओं के प्रति वितृष्णा, वह ही आश्रय है, जिसका ऐसा गुरु चरण का आश्रय ग्रहण करे।

अत्र प्रयोजनमाह—

तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेत्गुर्वात्मदैवतः।
अमाययानुवृत्या यैस्तुष्येदात्मात्मदो हरिः॥

तत्र गुरौ भागवतान् धर्मान् शिक्षेत्–शिक्षां कुर्वीत। गुरुरेव आत्म दैवतं सेव्योयस्य स तथा अमायया माया राहित्येन अनुवृत्त्या सेवया यै र्धमै र्हरि स्तुष्येत्,सर्वेषामात्मानं ददातीति आत्मदः तदधीनो भवति इति यावत्॥

गुरुचरण का प्रयोजन कहते हैं, उक्त लक्षणाक्रान्त श्रीगुरुदेव के निकट से भागवत धर्म की शिक्षा करे, शिक्षार्थी का आचरण गुरु के प्रति कैसा होना आवश्यक है, इसको कहते हैं- गुरु ही आत्मा दैवत-सेव्य है, जिसका ऐसा होकर शिक्षा ग्रहण करे, और अमाया माया कपट को छोड़कर अनुवृत्ति-सेवा करके ही शिक्षाग्रहण करें,जिस धर्म से श्रीहरि सन्तुष्ट होते हैं; एवं सबके आत्मप्रद प्रभु होकर भी अपने को उसका अधीन कर लेते हैं।

एवं तत् फलमाह—

इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्त्यातदुत्थया
नारायण परो मायामञ्जस्तरति दुस्तरां ॥

मायां तरति, किं कुर्वन्। तदुत्थया भागवत धर्मोत्थया, भक्त्या, नारायण परः सन् अञ्जः सुखेन दुस्तरां मायां तरति, किं कुर्वन्-इत्यनेन प्रकारेण गुरुसन्निधानात् भागवतान् धर्मान् शिक्षन् धर्म शिक्षां कुर्वन् इत्यर्थः। ननु तावदाचार्यस्य वेद पठन द्वारा, पितु र्जनकत्वात् मातु र्गर्भधारणपोषणत्वाच्च गुरुत्वमस्ति तत्र कुत्रभक्तिः कार्येत्याह—

गुरुर्न सस्यात् स्वजनो न सस्यात्
पिता न सस्यात् जननी न सास्यात्।
दैवं न तत् स्यात् न पतिश्च सस्यात्
न मोचयेद् यः समुपेत मृत्युम् ॥

समुपेतः संप्राप्तो मृत्युरूपः संसारो येन तं ततो भक्ति मार्गोपदेशेन यो न मोचयेत् सगुर्वादि र्नभवतीत्यर्थः।

इस प्रकार श्रीगुरुचरणाश्रय का फल कहते हैं, माया का पार हो जाना है, किस अनुष्ठान से ? उत्तर में कहते हैं—भागवत धर्म से उत्थित भक्ति द्वारा नारायण पर होकर ही सुख पूर्वक दुस्तर माया का पार कर लेना है। कैसे आचरण से ? उत्तर— इस प्रकार गुरु

सन्निकट से भागवत धर्म शिक्षा करके ही माया पार होती है, अच्छा वेदाध्ययन द्वारा आचार्य गुरु होते हैं, जनक होने के कारण पिता गुरु होते हैं, गर्भधारण पोषण के कारण माता भी गुरु होती है, तीनों स्थान में गुरुत्व होने का कारण भक्ति कहाँ पर की जाय ? उत्तर में कहते हैं—वह गुरु पद वाच्य नहीं है, स्वजन, पिता, जननी दैव-पति भी गुरु नहीं कहलाते हैं, यदि वे सब मृत्यु रूप संसार से जीव को उद्धार नहीं करते हैं। जिसने मृत्यु रूप संसार को प्राप्त ही कर लिया है, उससे भक्ति मार्गोपदेश द्वारा जो जन उसका मोचन नहीं करता वह गुरु शब्द वाच्य नहीं होता है।

ननु तावद् भगवान् श्री कृष्णः सर्वेषामीश्वरः स्वतन्त्र स्तस्य साक्षात् सेवया भक्तिर्भविष्यति तत् कथं भक्ताश्रयणं कार्य्यमित्याह—

श्री वैकुण्ठनाथवचनेन—

अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इवद्विज।

साधुभि र्ग्रस्त हृदयो भक्तै र्भक्तजन प्रियः॥

भगवान श्री कृष्ण तो सबके ईश्वर एवं स्वतन्त्र हैं, उनकी स्वतन्त्र साक्षात् सेवा से ही भक्ति होगी, तब भक्तजन का आश्रय लेने का प्रयोजन ही क्या है ? इसका उत्तर श्री वैकुण्ठनाथ के वचन से देते हैं— हे विप्र ! अस्वतन्त्र जनकी भांति मैं भी भक्त पराधीन हूँ। साधु भक्तजनों ने मेरे हृदय पर अधिकार जमा लिया है, कारण मैं भी भक्तजन प्रिय हूँ।

देवतान्तराराधनेन भगवान् प्राप्तव्यः किं भक्तै रित्यत्राक्रूरं प्रति भगवद् वचनमाह—

भवद्विधा महाभागाः सन्निषेव्यार्हसत्तमाः।

श्रेयः कामै र्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः॥

देवतान्तर आराधन के द्वारा भगवत् प्राप्ति हो सकती है, भक्त की अपेक्षा करने की आवश्यकता ही क्या है ? इसके उत्तर में कहते

हैं— आपके समान सर्वश्रेष्ठ सज्जन की शरण लेना एकान्त आवश्यक है। श्रेयस्कामी व्यक्ति के लिए देवान्तर का आश्रय लेना उचित नहीं है, कारण वे सब स्वार्थ परायण होते हैं— साधु भक्तगण स्वार्थ परायण नहीं होते हैं।

देवताराधनापेक्षया सद्यः फलत्वाच्च सत्सङ्ग एव श्रेयानिति मुचुकुन्द वचनेन—

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेत्
जनस्य तर्ह्यच्युत सत् समागमः।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ
परावरेशे त्वयि जायते मतिः॥

देवता आराधना की अपेक्षा सद्य फलप्रद होने के कारण सत्सङ्ग ही श्रेष्ठ है, इसको श्री मुचुकुन्द वचन से कहते हैं—

अनेकानेक जन्म में भ्रमण करते हुये, हे अच्युत! जब जन्म प्रवाह रोध होना होता है, तब ही आपके जनों का सङ्ग लाभ होता है, जब सत्सङ्ग होता है, तब ही निखिल विश्व का एकमात्र ईश्वर आपके प्रति मति होती है।

तस्मात् सत्सङ्गं विना न सद्यो भगवद् भक्तिरिति तात्पर्य्यार्थः अतएव सद्यः फलत्वं स्पष्टयति—

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामया
ते पुनन्त्युरु कालेन दर्शनादेव साधवः॥

अतः सत्सङ्ग को छोड़कर सद्य भगवद् भक्ति नहीं होती है, अभिप्राय उस प्रकार ही है। सद्य फल को दिखाते हैं— तीर्थ एवं देवता भी सद्य पवित्र कर नहीं सकते हैं, अनेक काल के बाद अनुकूल भाव से सेवन करते-करते पवित्रता आती है, किन्तु भक्त साधुगण दर्शन मात्र से ही सद्य पवित्र कर देते हैं।

एतद् भवापवर्ग-इत्यादि वाक्यैकवाक्यतयागम्यत इति भावः। यह वाक्य भी भवापवर्ग वाक्य के साथ समान अभिप्राय को लेकर ही कथित हुआ है।

वैष्णवाल्लभते भक्तिं भक्तया मां लभते नरः
तस्मात्तु वैष्णवो विष्णुः कलेर्मध्ये विशेषतः ॥

वैष्णव से ही भक्ति लाभ होता है, भक्ति द्वारा मुझे प्राप्त होता है, अतः कलियुग में विशेषकर वैष्णवगण ही विष्णु स्वरूप हैं।

एवं प्रकारार्थ भगवद्वचनमाह चतुर्भिः अन्नं हि प्राणिनां प्राणा आर्त्तानां शरणं त्वहं धर्मो वित्तंनृणां प्रेत्यासन्तोऽर्वाग्विभ्यतोऽरणं।

भिन्न प्रकार से भगवद् वचन उठाते हैं—

अन्नं हि प्राणिनां प्राणा आर्त्तानां शरणन्त्वहं।
धर्मोवित्तनृणां प्रेत्य सन्तऽर्वाग्विभ्यतोऽरणम् ॥

यथा अन्नमेव जीवनं अहमेव यथा शरणं, धर्म एव यथा परलोके वित्तं तधा सन्त एव अर्वाक् संसारे पतनाद् विभ्यतः पुंसः अरणं शरणं।

जैसे अन्न ही प्राणियों का जीवन रक्षक है, मैं जैसे सकल जीवों की शरण हूँ, मनुष्यमात्र के लिये मरणोत्तर काल में धर्म ही एकमात्र वित्त है, वैसा ही संसार पतन से भयातुर व्यक्तियों के लिए साधुगण ही एकमात्र शरण हैं।

किञ्च— ओर भी

सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि वहिरर्कः समुत्थितः
देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माहमेव च।

चक्षूंषि दुर्ल्लभानि स्थूल सूक्ष्म मद्भक्तिकर्त्तव्यता ज्ञानानि दिशन्ति सन्तः, अर्कः पुनः समुत्थितोऽपि वहिःस्थूल घटादिज्ञानं जनयतीत्यर्थः॥

साधु भक्तगण—अति दुर्ल्लभ स्थूल-सूक्ष्म रूपसे हमारे विषयक भक्ति कर्त्तव्यता-ज्ञान रूप प्रदान करते हैं, नेत्र सूर्यदेव सम्यक् रूपसे

उदित होकर भी वाहर घटादि विषयक स्थूल पदार्थ का ही ज्ञान कराता है।

प्रायेण भक्तियोगेन सत्सङ्गेन विनोद्धव
नोपायो विद्यते साधु प्रायणंहिसतामहम् ।
इष्टापूर्त्तेन मामेवं यो यजेत समाहितः
लभते मयि मद्भक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया ।

ज्ञान एवं भक्ति मार्ग का विवरण सुविशद रूप से कहा, ज्ञान मार्ग से भी भक्ति मार्ग श्रेष्ठ है, इसको कहते हैं—सत्सङ्ग से जो भक्ति मिलती है, उसको छोड़कर संसार तरण के लिए ऊपर कोई उपाय नहीं हैं, कारण सज्जनगणों का मैं ही एकमात्र आश्रय हूँ, अतएव सत्सङ्ग ही मुझको प्राप्त कराने के लिये एकमात्र कारण है।

मुझमें समाहित चित्त होकर जो जन जनहितकर अन्न जल वस्त्रादि दान रूप कर्म द्वारा मेरा भजन करता है वह मेरी सेवा के लिए दृढ़ा भक्ति प्राप्त करता है, इस प्रकार दृढ़ाभक्ति मान पुरुष जव जव साधु भक्त की सेवा करता है तो उसको मेरी स्मृति मिलती है।

तस्माद् गुरुत्वेन भगवद् भक्ताश्रयणमेव भगवद्भक्ति प्राप्तौ मूलं कारणमिति। अत्र केचिदाहुः। अत्र गुरुभक्तिरेव कृष्णभक्तिस्तस्या अपृथगायास साध्यत्वात् ॥ अथ तावद् गुरु भक्तिरेव किन्नाम ? उच्यते,–काय वाङ्मनोभिः सद्यः शक्याशक्या विचारेणाज्ञाप्रतिपालन पूर्वक गुरु चित्त वोधनं गुरु भक्तिरिति। एतदपि शरणापन्ने सति भवति। तत्र शरणापन्नस्य लक्षणमाह,प्रथमतो गुरो र्गोप्तृत्व स्वीकारः, आनुकूल्य करणं प्रातिकूल्य परित्यागः,सर्वस्व निःक्षेपः, तत् प्रसादलेश ग्रहणम्। आत्मनो निरभिमानित्वाचरणं, एतेन सर्वं निरवद्यं, यद्येवं भगवन्नामादि श्रवण कीर्त्तन स्मरण पाद सेवनादिकं कर्त्तव्यं नवेत्यादि शङ्के, यतस्तदाज्ञा वशादेव भगवत्परिचर्य्या तन्नामादि श्रवण कीर्त्तन वैष्णव सेवादिकं कर्त्तव्यमिति गुरु चित्त वोधनमुपपन्न मिति साधूक्तम्।

अतएव भगवद् भक्ति प्राप्ति के लिए श्रीगुरु रूप भगवद् भक्त का आश्रय लेना एकमात्र आवश्यक कर्म है, यहाँपर कुछ व्यक्ति का मत है कि श्रीगुरु भक्ति ही कृष्ण भक्ति है, क्योंकि गुरुभक्ति एवं कृष्ण भक्ति, एक प्रयत्न से ही निष्पन्न होती है, सम्प्रति जिज्ञासा हो सकती है कि गुरु भक्ति किसे कही जाती है– ? उत्तर में कहते हैं– कायिक–वाचिक–मानसिक यावतीय क्रियाओं से तत्काल सामर्थ्य– असामर्थ्य का विचार न करके ही श्रीगुरुदेव की आज्ञा का प्रतिपालन पूर्वक श्रीगुरु प्रसन्नता सम्पादन कर्म करना ही गुरु भक्ति है, यह भी श्रीगुरु चरण में शरणागत होने पर ही होती है। शरणापन्न का लक्षण इस प्रकार है — प्रथम श्रीगुरुदेव को ही गोप्ता— रक्षक— शरण— आश्रय रूप में सत्य रूपसे स्वीकार करना। सर्वथा उनकी प्रसन्नता कर आचरण करना, सर्वथा सब समय कायिक—वाचिक—मानसिक प्रातिकूल्य आचरण का परित्याग, निज समस्त विषयों का दान कर देना। उनके प्रसाद से प्राप्त वस्तु मे ही अपना निर्वाह करना, सर्वत्र सर्वदा अपना निरभिमानित्व आचरण, इन सब आचरणों से ही अनिन्द्यनीय श्रीगुरु भक्ति होती हैं।

यद्यपि श्रीभगवन्नामादि श्रवण-कीर्त्तन-स्मरण-पाद सेवन प्रभृति का अनुष्ठान करना कर्त्तव्य है अथवा नहीं ? इस प्रकार शङ्का का अवसर यहाँ पर आ जाता है, इस प्रकार कहना इस प्रसङ्ग में सर्वथा अनुचित है, कारण— श्रीगुरु की आज्ञा से ही श्रीभगवद् परिचर्या तन्नामादि श्रवण वैष्णव सेवा प्रभृतिका करना ही कर्त्तव्य है, अतएव समस्त आचरणों के द्वारा ही श्रीगुरुदेव की प्रसन्नता स्थापन करना ही उत्तम गुरुभक्ति है।

एवं गुरोः सर्वमयत्वमाह भगवद् वचनेन—

आचार्य्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्
न मर्त्यवुद्धयासूयेत सर्वदेवमयोगुरुः ॥

आचार्य्यं गुरूं मां विजानीयात् स एवाहमिति ॥

श्रीगुरुदेव ही सर्वदेवमय हैं, इसको प्रमाणित करते हैं, मुझको ही आचार्य गुरु जानना चाहिये, गुरु मैं ही हूँ, उनमें मर्त्त्य बुद्धि का आरोप कभी भी न करें, नतो दोषारोपण रूप असूया करे।

एवं प्रपञ्चयति—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु र्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मादादौ तमर्च्चयेत् ॥

इसका वर्णन विशद् रूप से कहते हैं— श्रीगुरु ही ब्रह्मा, विष्णु महेश्वर-परब्रह्म स्वरूप हैं, अतएव समस्त अर्च्चन आदि कृत्यों में उनकी अर्च्चना सर्व प्रथम ही करना चाहिए।

गुरौ प्रसन्ने सति फलमाह—

हरौ रुष्टे गुरु स्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन गुरुमेव प्रसादयेत् ॥

श्रीहरि रुष्ट होनेपर श्रीगुरुदेव उससे शिष्य की रक्षा करने में समर्थ हैं, श्रीगुरुदेव रुष्ट होनेपर कोई व्यक्ति उससे अपराधी की रक्षा नहीं कर सकता है,अतएव समस्त प्रयत्न द्वारा श्रीगुरुदेव की प्रसन्नता सम्पादन करें।

पूजाऽकरणे अमङ्गलफलमाह—

गुरौ सन्निहिते यस्तु पूजयेदग्रतो न तं।
स दुर्गतिमवाप्नोति पूजा च विफला भवेत् ॥

श्रीगुरुदेव समीप में अवस्थित रहने पर यदि कोई व्यक्ति अग्र पूजा उनकी नहीं करता है तो वह जन दुर्गति को प्राप्त तो करता ही है, साथ ही साथ पूजा का फल भी उसको नहीं मिलता है।

विद्याद्यभावेऽपि सएव परमेष्टदेव इत्याह—

अविद्यो वा सविद्यो वा गुरुरेव तु दैवतम्।
मार्गस्थो वाप्य मार्गस्थो गुरुरेव सदागतिः ॥

श्रीगुरुदेव विद्वान् हो अथवा विद्वान् नही, तो भी इष्ट देव रूप में उनको मानना आवश्यक है। अथवा मार्गस्थ हो, मार्गस्थ न हो तो भी आश्रय लेना आवश्यक है।

तत्र विमुखेऽनिष्टमाह—

प्रतिपद्य गुरुं यस्तु मोहाद् विप्रतिपद्यते ।
स कल्प कोटी नरके पच्यते पुरुषाधमः ॥

गुरु वरण करने के पश्चात् गुरु के विषय में यदि सन्दिग्ध होता है, तो वह पुरुषाधम कोटिकल्प कालतक नरकमें सड़ता रहेगा।

तत्सन्निधौ व्यवहार माह—

आयान्तमग्रतो गच्छेद् गच्छन्तं तमनु व्रजेत् ।
आसने शयने वापि न तिष्ठेदग्रतो गुरोः ॥

श्रीगुरुदेव के निकट कैसा व्यवहार करना चाहिये, उस को कहते हैं, श्रीगुरुदेव को आते देखकर स्वागत करने के लिए आगे बढ़े, जाते समय भी गुरुदेव के पीछे पीछे गमन करे। बैठने के समय, शयन के समय श्रीगुरुदेव के सामने शयन न करे।

अनुज्ञां प्राप्य यस्तिष्ठेन्नैव पापमवाप्नुयात् ॥

अनुमति लेकर समीप में उपवेशन करने पर दोषी नहीं होगा

गुरौ दुरस्थे निकटस्थे च भोजन व्यवहारमाह—

यत् किञ्चिदन्न पानादि प्रियं द्रव्यं मनोरमं ।
समर्प्य गुरवे पश्चात् स्वयं भुञ्जीत प्रत्यहं ॥

गुरु दूर में हो, अथवा समीप में भोजन व्यवहार कैसा करना चाहिए उसकी कहते हैं, भोजन, पान, के लिए जो कुछ भी वस्तु हो, निज प्रिय मनोरम समस्त वस्तु, श्री गुरुदेव को पहले समर्पण करने के वाद ही प्रत्यह स्वयं ग्रहण करे ॥

प्रकरणार्थमुपसंहरन्नाह—

महान्धकार मध्येषु आदित्यश्च प्रकाशकः ।
अज्ञान तिमिरान्धेषु गुरुरेव प्रकाशकः ॥

इति श्रीनरहरिदासचरणारविन्दप्रोल्लसित श्रीलोकानन्दाचार्येण ग्रथिते श्रीभक्ति सार समुच्चये गुरुत्वेन भक्ताश्रयणस्य सर्वोत्कृष्टत्वनिर्णय नाम तृतीयं विरचनम् ॥ प्रकरण समाप्त करने के उद्देश्य से कहते हैं,-महान्धकार में सूर्य ही एकमात्र प्रकाश दाता हैं, उस प्रकार अज्ञान तिमिर रोग से नयन नष्ट हो जाने पर हृदय जव अशास्त्रीय अज्ञान अन्धकार से व्याप्त हो जाता हैं तो उस समय श्रीगुरु देव ही एकमात्र ज्ञानालोक प्रदाता हैं ।

इति श्रीनरहरि दास के चरणारविन्द से प्रोल्लसित मानस श्रीलोकानन्दाचार्य विरचित श्रीभक्तिसार समुच्चय ग्रन्थ में गुरुरूपमें भक्त के चरणारविन्दाश्रयत्व का सर्वोत्कृष्टत्व निर्णय नामक तृतीय विरचन समाप्त हुआ ।

अथ तावत् सर्व धर्म साध्यत्वात् परम मङ्गलरूपं भगवन्नामैव सर्व श्रेष्ठतममिति तन्महिमानं दर्शयितुमाह— (१)

नाम्नोऽस्य यावतीशक्तिः पाप निर्हरणे हरेः ।
तावत्कर्त्तुं न शक्नोति पातकं पातकीजनः (२)
तथा,–वर्त्तमानञ्च यत्पापंयद्भूतंयद् भविष्यति ।
तत् सर्वं निर्हरत्याशु गोविन्दस्यानुकीर्त्तनम् (३)

एवं परममङ्गलत्वं दर्शयति त्रिभिः—

कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्यवाचि प्रवर्त्तते ।
भस्मीभवन्ति राजेन्द्र महापातक कोटयः । (४)
गायन्ति वैष्णवाः सर्वेकृष्णेति नाम मङ्गलम् ।
सर्वत्र मङ्गलं तेषां कुतस्तेषाममङ्गलम् ॥(५)

अनन्तर सकल धर्मो का एकमात्र साध्य होनेके कारण परम

मङ्गलरूप भगवन्नाम ही समस्त श्रेष्ठतम वस्तु है, अत श्रीहरिनाम की महिमा वर्णन करते हैं—(१)

श्रीहरि के नाम में जितनी पापनाशक शक्ति है, पातकीजन उतनापाप करने में समर्थ नहीं है। (२)

वर्त्तमान, अतीत एवं भविष्यत् कालीन पापसमूहको श्रीगोविन्द नाम कीर्त्तन विनष्ट कर देता है। (३)

सकल वैष्णवगण श्रीकृष्णनामगान करतेहैं, उनसव का मङ्गल सर्वत्र होता है, उन सव का अमङ्गल की सम्भावना ही कहाँ है ॥४॥

जिस की वाणी में मङ्गलमय कृष्णनाम विलसित होता है, वहाँ के कोटि कोटि महापातक समूह ज्वल जाते हैं,। सकल वैष्णव गण मङ्गलमय श्रीकृष्णनाम का गान सर्वदा करते रहते हैं, अत उनसव का सर्वत्र ही मङ्गल होता है, अमङ्गल की सम्भावना ही कहाँ है ॥ (५)

सकृदुच्चारणेऽपि परम मङ्गलमाह—

मधुर मधुर मेतन्मङ्गलं मङ्गलानां
सकल निगमवल्ली सत् फलं चित् स्वरूपम् ।
सकृदपि परिगीतं हेलया श्रद्धया वा
भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम ।

नरमात्रमित्यनेन जात्याद्यपेक्षा नास्तीति भावः ॥

श्रीकृष्ण नाम मधुरसे भी मधुर एवं समस्त मङ्गलों का मङ्गल प्रदाता हैं। समस्त वेदादि शास्त्र वल्ली का एकमात्र सार सिद्धान्तरूप सत् फल स्वरूप हैं, चित् स्वरूप हैं, एकमात्र श्रद्धा से अथवा हेला से यह नाम ग्रहण करने पर श्रीकृष्णनाम मनुष्य मात्र को पवित्र करता है। "नरमात्र" शब्दसे जाति वर्णकी अपेक्षा श्रीकृष्ण नाम में नहीं है

एतत् सदृशं किमपि नास्तीत्याह—

न नाम सदृशं ज्ञानं न नाम सदृशंव्रतम् ।

न नाम सदृशं ध्यानं न नाम सदृशं फलम्

न नाम सदृशं स्त्यागो न नाम सदृशं तपः।

न नाम सदृशी मुक्ति न नाम सदृशः प्रभुः ॥

श्रीहरिनाम के समान अन्यकुछ भी नहीं हैं. ज्ञान, व्रत, ध्यान, फल, साध्य, त्याग, तपस्या, मुक्ति, समर्थ, प्रभु, विषयों में श्रीनाम की समता कोई भी पदार्थ कर नही सकता, ।

एवं नाम ग्रहण मात्रेण भगवत् प्रीति जायित इति, ।

कामादि गुण संयुक्ता नाम मात्रैक बान्धवाः ।

प्रीतिं कुर्वन्ति ते पार्थ न तथा जितषड् गुणाः ॥

ये गृह्णन्ति हरेर्नाम त एव जित षड् गुणाः ।

हे पार्थ-कामादि गुणयुक्त श्रीहरिनाम परायण व्यक्तिगण मुझे प्रीति करते हैं वैसे जितषड् गुण व्यक्तिगण नहीं है करते हैं, जो जन श्रीहरिनाम ग्रहण करते हैं वे ही जित षड् गुण है।

एवं तस्य विशेष लाभमाह—

मम नाम सदाग्राहि मम नाम प्रियः सदा।

भक्तिस्तस्मे प्रदातव्या न च मुक्तिः कदाचन ।

इस प्रकार श्रीनाम ग्रहण का विशेष फल भी कहते हैं—जो सदा मेरा नाम लेता है, सदा मेरे नाम में प्रीति रखता है। उस को में भक्ति दान करता हूँ, मुक्ति कभी नहीं देता हूँ।

भक्तिः प्रेम लक्षणा। एषांविशेषफलमाह—

श्रद्धया हेलया नाम वदन्ति मम जन्तवः

तेषां नाम सदा पार्थ वर्त्तते हृदये मम ॥

तथा—मानवा ये हरेर्नाम सेवन्ते नित्यमेव च

भक्त्या सह गमिष्यन्ति यत्र योगेश्वरः प्रभुः ॥

उपरीक्त भक्ति शब्द से प्रेम लक्षण भक्ति अर्थ जानना होगा इस प्रकार श्रीनाम ग्रहण का विशेष फल भी कहते हैं—जोभी मानव श्रद्धासे अथवा हेला से मेरा नाम ग्रहण करता है, उसका नाम सदा के लिए मेरे हृदय में अङ्कित रहता है। जो मानव नित्य श्रीहरिनाम की सेवा करता है, वह भक्ति के साथ योगेश्वर प्रभु के निकट गमन करता है।

एवं रामनाम्नो विशेषमहिमानमाह—

राम रामेति रामेति राम रामे मनोरमे ॥

सहस्र नामभि स्तुल्यं राम नाम वरानने ॥

श्रीराम नाम की विशेष महिमा कथित है-हे वरानने सहस्र नाम के समान एक ही राम नाम है,

एवं नामादि प्रसङ्गात्सर्व तीर्थ सम्भावना भवतीत्याह—

तत्रैव गङ्गा यमुना च तत्र।

गोदावरी तत्र सरस्वती च ॥

सर्वानितीर्थानि वसन्ति तत्र।

यत्राच्युतोदार कथा प्रसङ्गः।

भगवत नाम प्रभृति के प्रसङ्ग से समस्त सर्वतीर्था गमन की सम्भावना भी होती है,। गङ्गा यमुना, गोदावरी, सरस्वती समस्त तीर्थ वहाँ पर निवास करते है, जहाँपर उदार अच्युत सम्बन्धीय कथा की सम्भावना होती है।

विशेषमाह—मन्नाम स्मरणात् किञ्चित् कलौ नास्त्येव पातकम् मद् भक्ता यत्र गायन्ती तत्र मे पार्थिव स्थितिः। कलियुग में मेरा नाम स्मरण प्रभावसे कुछ भी पातक अवशेष नहीं रहता है, मेराभक्त जहाँ पर मेरा नाम गान करता है, मेरी वहाँपर ही स्थिति होती है।

जगन्नाथ नाम्नो महिमानमाह सप्तभिः वैदिक तन्त्रे इन्द्रद्युम्नं प्रति ब्रह्मवाक्यम्।

पूजयस्व जगन्नाथं सर्वतन्त्रेषु गोपितं

गुह्यात् गुह्यतरं नाम कीर्त्तयस्व निरन्तरम् ।

यस्तु संकीर्त्तयेन्नित्यं जगन्नाथमतन्द्रितः

निर्मुक्त सर्वपापेभ्योमुक्तवन्धः परं व्रजेत् ॥

७—सात श्लोकों के द्वारा श्रीजगन्नाथ नाम कीर्त्तनकी महिमा को कहते हैं,- श्रीजगन्नाथ देव की पूजा करो, आप समस्त तन्त्र में गुप्त रूप में विराजित हैं, गोपनीय से भी गोपनीय उनका नाम हैं। निरन्तर उन नाम का कीर्त्तन करो। जो लोक अप्रमादी होकर नित्य जगन्नाथनाम कीर्त्तन करता है। वह समस्त पापों से मुक्तहोकर परम धाम को प्राप्त करता है। विष्णुजामल कूर्म्मध्वजोत्तरण प्रस्तावे महादेवंप्रति श्रीभगवद् वाक्यम्—

जगनाथेति नाम्ना मे कीर्त्तयन्ति च ये नराः ।

अपराधशतं तेषां क्षमिष्ये नात्र संशयः ॥

विष्णुजामल ग्रन्थमें कूर्म्मध्वजोत्तरण प्रस्ताव में महादेवके प्रति श्रीभगवद् वाक्य इस प्रकार है—

जो मनुष्य मेरा जगन्नाथ नाम कीर्त्तन करता है, उस का शत अपराध निःसन्देह क्षमा करता हूँ।

ब्रह्म रहस्ये शूरशर्म्मब्राह्मणं प्रति नारदवाक्यं—

सकृदुच्चारयेद् यस्तु जगन्नाथेति हेलया,

ब्रह्म हत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥

सर्वाचार विहीनोऽपि तापक्लेशादिसंयुतः ।

जगन्नाथं वदन्विप्र याति ब्रह्म सनातनम् ।

ब्रह्म रहस्य में शूरशर्म ब्राह्मणके प्रति नारद वाक्य इस प्रकार है—हेलासे भी एकवार जगन्नाथ नाम जो उच्चारण करता है वह निःसन्देह ब्रह्महत्यादि समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है, तापक्लेशादि

युक्त सर्वाचारविहीन् जन भी जगन्नाथ नाम उच्चारण से सनातन ब्रह्म के सान्निध्य प्राप्त करता है,
मेरु तन्त्रे ब्रह्मणो नाम कीर्त्तन प्रस्तावे वैष्णवान् प्रति नारद वाक्यम् ।

नाम्नां मुख्यतरं विष्णो र्जगन्नाथमुदीरितं
नातः परतरं नाम त्रिषुलोकेषु विद्यते ।
न गङ्गा स्नानमेतादृङ् न काशी गमनं तथा,
जगन्नाथेति संकीर्त्य नरः कैवल्यमाप्नुयात् ॥

मेरु तन्त्र में ब्रह्मका नाम कीर्त्तन प्रस्ताव में वैष्णव के प्रति श्रीनारद जी का कथन इसप्रकार है,—

श्रीविष्णु के समस्त नामों में मुख्यतर नाम जगन्नाथ नाम है, इससे तिन लोकों में परतर नाम और कोई नहीं है, इस की समानता गङ्गा स्नान, काशी गमन भी नही कर सकते, जगन्नाथ नाम कीर्त्तन कर लोक कैवल्य प्राप्त कर सकता है।

एवं विशेष महिमानमाह—

विष्णो र्नामैव पुंसः समलमपररत् पुण्यमुत्पादयच्च ।
ब्रह्मादि स्थान भोगाद् विरतिमथगुरोः श्रीपदद्वन्द्व भक्ति ।
तत्त्वज्ञानञ्च विष्णो रिहमृति जनन भ्रान्तिवीजञ्च दग्ध्वा ।
सत्यञ्चानन्दबोधे महतिच पुरुषे स्थापयित्वा निवृत्तम् ॥

श्रीहरिनाम की विशेष महिमाका सारसङ्कलन इस प्रकारहै—

श्रीविष्णु का नाम ही मानव का पापनाश करने में समर्थ है, एवं पुण्य उत्पादन भी करताहै । ब्रह्म लोकआदि स्थानोंकाभोग करने की वासना मानव की स्वाभाविकी रहती है, उस में वैराग्य उत्पादन कराने में श्रीहरिनाम ही समर्थ है, श्रीगुरुचरणार विन्द में भक्ति लाभ करना अति दुष्करकार्य है, वह भी श्रीहरिनाम सेही होताहै, श्रीविष्णु का तत्त्व ज्ञान भी श्रीहरिनाम से होता है, जनन मरण का वीज को

भी श्रीहरिनाम दग्ध कर देता है, सत्य आनन्द वोध तो श्रीहरिनाम कराता ही है, अधिकन्तु श्रीविष्णु के साथ योगायोग स्थापन भी कर देता है ।

तस्मात् गुरुसन्निधानात् कृष्णोपदेशं गृहीत्वा भक्ति साधनं कार्य्य मिति । नन्वत्र गुरोरूपदेशे कर्त्तव्ये दक्षिणा दीक्षा पुरश्चरण विधि-नियमोऽस्तीतिकथं नस्यादित्यत्राह भगवद् वाक्येन-आकृष्टिः कृत चेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसामाचाण्डाल मनुष्य लोक सुलभो वश्यश्य मोक्षश्रियः।नो दीक्षां न च दक्षिणां न च पुरश्चर्य्यांमनागीक्षते मन्त्रोऽयं रसना स्पृगेव फलति श्रीकृष्णनामात्मकः । सर्वचित्ताकर्षक निखिल पापापहारक मनुष्यमात्र सुलभ मुक्तानन्द प्रदायक श्रीकृष्ण नाम है, इस के लिए दीक्षादक्षिणा पुरश्चरण प्रभृति की थोड़ी भी आवश्यकता नही है, रसना में स्पर्श होते ही श्रीकृष्ण नामात्मक मन्त्र फल प्रदान करते हैं ।

यथा पाद्मे—

कृष्णाय नाम इत्येषमन्त्रः सर्वार्थ साधकः

भक्तानां जपतां भूप स्वर्गमोक्ष फलप्रदः ।।

पद्मपुराण में उक्त है—कृष्णाय नमः यहमन्त्र सर्वार्थ साधक है, हे राजन् ! यह मन्त्र अपराध वर्ज्जित होकर ग्रहण करने से नाम स्वर्ग मोक्ष फल प्रदान करते हैं, ।

एवं स्मरणादौ कालदेशादि नियमोनास्तीत्याह—

श्रीभगवच्छ्रीकृष्णचैतन्याज्ञया द्वाभ्याम् ।।

श्रीहरिनाम का स्मरण में कालदेशादि का नियम नहीं है, भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य देवकी आज्ञा रूप श्लोकद्वयसे इसका प्रदर्शन करते हैं, ।

नाम्नामकारि वहुधानिजसर्वशक्ति ।

स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः ।

एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि
दुर्दैव मीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥
न काल नियमस्तत्र न देश नियमस्तथा,
नोच्छिष्टादौ निषेधः स्यात् कृष्णनामानुकीर्त्तने॥

श्रीहरिनाम में निजसर्वशक्ति का अर्पण श्रीप्रभुने किया है, स्मरण के लिए कालादि की भी नियम आपने नहीं रखाहै, हे भगवन् आपकी कृपा इस प्रकार हैं; मेरा दुर्दैव भी अद्भुत है, श्रीहरिनाम में अनुराग नहीं हुआ।

कालदेश का नियम श्री हरि नाम में नहीं है, उच्छिष्टादि अवस्था भी श्रीहरिनाम ग्रहण में दोषावह नहीं है।

इदानीं प्रकरणार्थमुपसंहरति शुक्राचार्य्यवाक्येन—

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देश कालार्हवस्तुतः।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नाम संकीर्त्तनं हरेः॥

तथा—श्रवणं कीर्त्तनं ध्यानं विष्णोरदभुत कर्मणः।
जन्म कर्म गुणानाश्च तदर्थेऽखिल चेष्टितम्॥

देश काल योग्यता द्रव्य मन्त्र तन्त्र से अनुष्ठान में जो भी त्रुटि होती है, उनसव की पूर्त्ति श्रीहरिनाम कीर्त्तन ही करते हैं, । अद्भुत कर्मा श्रीविष्णु का श्रवण कीर्त्तन ध्यान, एवं जन्म कर्म गुणों का अनु शीलन एकान्त आवश्यक है, एवं उनके लिए ही अखिल चेष्टा होनी चाहिये।

एवं भगवतः श्रीकृष्णस्य नाम कीर्त्तन श्रवणादिना भक्तिर्भवती त्यर्थः। यद्यपराधो न जायते तत् किमित्याह सतां निन्दा नाम्नः परम मपराधं वितनुते यतः ख्यातिं यातं कथमुसहते तद्विगरिहाम्। शिवस्य श्रीविष्णोर्यइह गुण नामादि सकलं धियाभिन्नं पश्येत् सखलु हरिनामा हित करः।

गुरोरवज्ञा श्रुति शास्त्र निन्दनं
तथार्थवादो हरिनाम्नि कल्पनं ।
नाम्नो बलाद् यस्य हि पापबुद्धि
र्न विद्यते तस्या यमैर्हि शुद्धिः ॥

गुरोरवज्ञा—गुरोराज्ञाच्छेद करणम् । वेदादि निन्दनं अर्थवादः सकृद्धरि नाम कीर्त्तने अनेक जन्मार्ज्जित पापक्षयो भवतीति किं संभाव्यते, न सर्वपापक्षय करणे शक्ति रस्तीति मननं । हरिनाम्नीति उभयत्र सम्वन्धः । कल्पनं चिर कालेननाम ग्रहणात् पापक्षयोभवतीति सम्भावनम् । नाम बलात् पापवुद्धे र्जनस्य यमैर्द्वादश प्रकारै र्व्रत विशेषैः शुद्धिर्नस्यादित्यर्थः ।

श्रीहरिनाम की अप्रसन्नता सर्वाधिक होती है, सज्जनों की निन्दासे, कारण उन्हीं से श्रीहरिनाम की ख्याति होती है, तव कैसे श्रीहरि सत् की निन्दा को सहन कर सकते हैं ?

श्रीशिव एवं श्रीविष्णु के साथ वुद्धि पूर्वक पारस्परिक भेद वुद्धि करना श्रीहरिनामापराध है, श्रीगुरुदेव की अवज्ञा, वेदादि शास्त्र का निन्दन, श्रीहरिनाम में अर्थवाद कल्पन, नाम के वलपरपाप आचरण करने पर यमादि साधन से भी उसकी शुद्धि नही होती है ।

गुरु की अवज्ञा का अर्थ है, श्रीगुरुकी आज्ञालङ्घन करना, वेदादि शास्त्र में प्रीति न करना, । अर्थवाद=एकवार हरिनाम लेने पर अनेक जन्मार्ज्जित पापक्षय होता है, यह क्या सम्भव है, समस्त पापक्षय नहीं कर सकते हैं, इस प्रकार मानना अर्थवाद है, हरिनाम में कुछ भी कल्पना करना अपराध है, अर्थात् अनेकदिन नाम ग्रहण करने से पापक्षय होता है, इस प्रकार सम्भावनासे अपराध होता है, नामके वलसे पाप में प्रवृत्ति होने पर द्वादश प्रकार यम के द्वारा भी उस की शुद्धि नहीं होती है ।

अथ यमाः

अहिंसा सत्यमस्तेयमसङ्गो ह्रीरसञ्चयः ।
आस्तिक्यं ब्रह्मचर्य्यञ्च मौनं स्थैर्यं क्षमाभयम् ॥

अहिंसा सत्य, अस्तेय असङ्ग लज्जा, असंग्रह आस्तिक्य ब्रह्मचर्य्य मौन स्थिरता, क्षमा, अभय । ये सव यम कहलाते हैं-इस के यथावत आचरण से भी नामापराधी की शुद्धि नहीं होती हैं ।

प्रसङ्गान्नियमाः—लिख्यन्ते—

शौचं जप स्तपो होमःश्रद्धातित्थ्यं मदर्च्चनम् ।
तीर्थाटनं परार्थेहातुष्टि राचार्य्य सेवनम् ॥

प्रसङ्गवश नियमसमूह का प्रदर्शन करते हैं—नामापराधी की शुद्धि नियमों से भी नहीं होती है, नियम यह सवहै, शौच स्नान आदि से शुद्धि, जप, तप, होम, श्रद्धा, अतिथि सेवन, श्रीभगवदर्च्चना, तीर्थ गमन, दूसरे के उपकार के लिए निरन्तर, प्रयत्न, सन्तोष, गुरु आचार्य की सेवा ॥

तस्मान्नामवलात् जनोः पापबुद्धिर्न भवेदिति भावः ।

धर्म व्रतत्याग हुतादि सर्व
शुभ क्रिया साम्यमपि प्रमादः ।
अश्रद्दधाने विमुखेऽप्यशृण्वति,
यश्चोपदेशः शिवनामापराधः ॥

श्रुत्वापि नाम माहात्म्यं यः प्रीति रहितोऽधमः ।
अहं ममादि परमो नाम्नि सोऽप्यपराधकृत् ॥

अतएव श्रीनाम ग्रहण के वलपर कोई भी व्यक्ति पाप में प्रवृत्त न होवे, कहने का अभिप्राय यह है ।

धर्म, व्रत, त्याग यज्ञ, एवं यावतीय सत्कर्म का अनुष्ठान के साथ श्रीहरिनाम की समता करना भी नामापराध है, अश्रद्धालु जनके प्रति एवं जो लोक सुनना नहीं चाहता है, एवं विमुख है, उसके प्रति

भी श्रीहरिनाम उपदेशं करना नामापराध है।

नन् नामापराध युक्तस्य केन निस्तारः स्यात् इत्यत्राह—

नामा पराधयुक्तानांनामान्येव हरन्त्यघं।

अविश्रान्तं प्रयुक्तानि तान्येवार्थ कराणि च ॥

तस्मात् सर्वतः सावधानेन व्यवहर्त्तव्य मितिवाक्यार्थः।। ॥

इति श्रीभगवद् भक्तिसारसमुच्चये नाममाहात्म्यनिर्णयंनाम चतुर्थं विरचनम् ॥

अच्छा! नामापराधी व्यक्ति का उद्धार कैसे होगा? इसके उत्तर में कहते हैं,—श्रीहरिनामापराधी का उद्धार श्रीहरिनाम ही करते हैं, श्रीहरिनाम की शरण लेकर अपराध को छोड़कर निरन्तर श्रीहरिनाम ग्रहण से नामापराध विलय होता है, अतएव अति सावधानता के साथ ही सर्वत्र व्यवहार करना आवश्यक है।

"चतुर्थ विरचन"

—❋—

अथ तावद् भगवतो भक्ति साधन विरचनमारभते।

तत्र प्रथमतो गुरुमेवाश्रित्य श्रद्धायुक्तो भगवन्तंभजेदित्याह कविवाक्येन—

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्या

दीशादपेतस्य विपर्य्ययोऽस्मृतिः ॥

तन्मायया‌ऽतो वुध आभजेत्तं

भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥

आत्म भिन्न देह गेह प्रभृति में अभिनिवेश होने पर पुनःपुनः जन्म मरण प्रवाह रूप संसारभय होता है, श्रीभगवान् से सम्बन्ध नष्ट जाने पर भगवद्विषयक स्मृति नष्ट ही जाती है, और जड़पदार्थ में ममत्व होने लगता है, यह सव कार्य भगवत् माया सेही होता है, अतः एकनिष्ठ भक्ति से गुरुदेवतात्मा होकर श्रीभगवान् का भजन वुधजन के लिए एकान्त आवश्यक है॥

एवं श्रद्धया भक्त्या भगवन्तं भजतोऽव्यवहरणमाह—

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणे
र्जन्मानि कर्म्माणि च यानि लोके ।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन्विलज्जो विचरेदसङ्गः ॥

इसके पहले मन संयम करने के लिए कहा गया है, मन संयम होने पर एकाग्र भक्ति होगी, उससे श्रीभगवान् का भजन सम्भव है, किन्तु यह मानव के लिए सर्वथा असम्भव है। इसलिए सुगम पथ का उपदेश करते हैं—

परम मङ्गलमय चक्रपाणि के मङ्गलमय नाम समूहका श्रवण निरन्तर करे, इस जगत् में भक्तविनोदन के लिए कर्म करके जो कुछ प्रसिद्ध अर्थयुक्त नाम श्रीप्रभु का प्रसिद्ध है, उनसव का ही श्रवण कीर्त्तन करे—एवं व्यर्थ देहकी आसक्ति-लज्जाभय परित्याग पूर्वक श्रीभगवान् का भजन करे।

एवं भगवदनुग्रहं प्रार्थयमानं यदा भगवाननु गृह्णाति येन भक्ति र्भवति तदा पुलकादि युक्त तनुर्भवतीति प्रवुद्ध वाक्येनाह—

स्मरन्तः स्मारयन्तश्चमिथोऽघौघहरं हरिं ।
भक्त्या सञ्जातया भक्त्या विभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ॥

श्रीभगवदनुकम्पा की ओर दृष्टि रखकर भजन करने पर श्री भगवान की कृपा होती है, जिससे भक्ति होतीहै, एवं वपु पुलकायित होता है, प्रवुद्ध वाक्य से प्रमाणित करते हैं—

सर्वपापापहारक हरि का चिन्तन करने और कराने से भक्ति होती है, एवं उक्त भक्ति से तनु पुलकायित होता है, ।

यदा यस्यानु गृह्णाति भगवानात्मभावितः
सजहाति मतिं लोके वेदेच परिनिष्ठिताम् ॥

इत्येवं भगवदनुग्रहे सति तच्चिन्तनेन ब्रह्मानन्द सुखानुभवो भवतीति प्रवुद्ध वाक्येनाह—

क्वचिद् रुदन्त्यच्युत चिन्तया क्वचिद्
हसन्ति नन्दति वदन्त्यलौकिकाः ।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यमुं
भवन्ति तुष्णीं परमेत्य निर्वृताः ।।

अच्युतचिन्तया क्वचिदेवमेवं कुर्वन्ति । कदाचित् परमेत्य निर्वृताः सन्त एव ब्रह्मानन्दसुखस्वभावात् सद्यस्तूष्णीं तिष्ठन्ति । कथमेवं, गतिमण्वीं प्रयुङ्क्ते इति तेन नियुक्तोऽनुभूय पश्चात् प्रवोधमेत्य तत् तुच्छीकृत्य पुन मार्गे प्रवर्त्तन्ते इत्यवं ।

सरलता के साथ शरणागत होकर श्रीभगवत् भजन से श्री भगवान् की कृपा होती है, उनकी अनुकम्पा से लोक धर्म एवं वेदोक्त काम्य कर्म में से महत्त्ववुद्धि हठ जाती है; इस प्रकार भगवद् अनुग्रह होने पर ही उनका चिन्तन से ही ब्रह्मानन्दानुभव भी होता है। इसका प्रदर्शन प्रवुद्ध वाक्य से करते हैं—

श्रीभगवान की चिन्ता करते करतेजव अपनी आयु की और दृष्टि जाती है, तव निर्वेद होता है, अवतक काल व्यर्थ ही गवाँया, अतएव भक्त रोते रहते हैं, उनकी करुणा को देखकर कभी तो हसते हैं, भगवान् की भक्त विनोदन लीला की देखकर, कभी तो परम मनोहर श्यामल सुन्दर को देखकर सुखी होती हैं, कभी कभी अलौकिक वाणी कहते हैं, कभी नाचते हैं, तो कभी गाते हैं, कभी अच्युत की लीलामें तन्मय हो जाते हैं, तो कभी परमानन्द में निमग्न होकर मौन धारण करलेते हैं। कभी तो मुक्ति का अनुभव करने के वाद उसको तुच्छ मान कर छोड़ देते हें एवं भक्ति मार्ग में स्थित हो जाते हैं ।

एवमाचरतो भगवत्यनुरागो जायत इत्याह कविवाक्येन—

एवं व्रतः स्व प्रियनाम कीर्त्या

जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौतिगाय
त्युन्मादवन्नृत्यति लोक वाह्यः ॥

एवं श्रवण कीर्त्तनादिकं व्रतं चरितं यस्य सः। स्व प्रियः श्री कृष्णस्तस्य नाम कीर्त्या तत् सङ्कीर्त्तनेन जातानुरागो–यत् किञ्चिदनु राग युक्तो भवेत् तेन द्रुत चित्तश्च। स्वतन्त्रोऽपीश्वरो भक्त पराधीन इत्युच्चै र्हसति, एतावन्तं कालं तत् सेवां विना वञ्चितोऽस्मीति रोदिति, एवं विशिष्टं भगवन्तं सर्वे भजन्तीति रौति शब्दायते, जितं जितमिति गायति उन्मत्तवत् नृत्यति च, लोक वाह्य इति सर्वत्रान्वयः एवं भक्ति प्रागल्भ्य जनित तच्चिन्तया कदाचित्ते ग्रहग्रस्ता इव भवेयु रित्येवाह त्रिभिः ॥

श्रवण कीर्त्तनादि भक्त्यङ्ग का आचरण ही जिसका चरित है ऐसा भक्त स्व प्रिय श्रीकृष्ण, उनका नाम सङ्कीर्त्तन द्वारा तृष्णा की वृद्धि होने पर चित्तअतिशय मसृण हो जाता हैं, उस समय अनुभव होता है कि प्रभु स्वतन्त्र भक्त पराधीन हैं, इस प्रकार जानकर हँस पड़ता है, अव तक प्रभुकी सेवा के विना व्यर्थ विताया, यह ज्ञान कर रोदन करता है, इस प्रकार भगवान् का भजन सवजन करते हैं, यह जान कर उच्चशब्द करता रहता है, जिता जिता, जिता, इस प्रकार गाता रहता है, प्रेम विभोर होकर उन्मत्तवत् नृत्य करता रहता है, लोक वाह्य शब्द का सर्वत्र अन्वय है, अर्थात् कदापि लोक समर्थन प्राप्त करने के लिए कुछ भी नहीं करता है। इस प्रकार भक्ति की वृद्धि से श्रीहरि की चिन्ता से कदाचित् ग्रह ग्रस्तके समान दिखाई देता है। इसका विशेष विवरण तीन श्लोकों से कहते हैं।

निशभ्य कर्माणि गुणानतुल्यान्,
वीर्य्याणि लीला तनुभिःकृतानि।
यदाति हर्षोत् पुलकाश्रु गद्गदं

प्रोत्कण्ठ उद्गायति नृत्यते च ।।
यदा ग्रह ग्रस्त इव क्वचिद्धस
त्याक्रन्दति ध्यायति वन्दते जनम् ।
मुहुः श्वसन् व्यक्ति हरे जगत् पते
नारायणेत्यात्ममतिर्गतत्रपः ।।
तदापुमान् मुक्त समस्त बन्धन–
स्तद्भाव भावानु कृताशया कृतिः ।
निर्दग्ध वीजानुशयोमहीयसा
भक्ति प्रयोगेण समेत्यधोक्षजम् ।।

यदा कर्मादीनि निशम्यातिहर्षोत्पुलकाश्रु गद्गदं यथा स्यात् प्रोत्कण्ठ उद् गायति नृत्यतेच यदा ग्रह ग्रस्तइव क्वचिद् हसतीत्यादि, गतत्रपः निर्ल्लज्ज इति सर्वत्रान्वयः। तदा पुमान मुक्त समस्त बन्धनः त्यक्त सर्व दुर्वासनः तद्भाव भावानुकृताशयाकृतिः तद्भावः तच्चेष्टा तस्यानुध्यानेनानुकृते आशयाकृती यस्य स तथा तदाकारचित्त स्तदाकारावयवश्चेति भावः। निर्दग्धौ वीजानुशयौ यस्य सः, भक्ति-प्रयोगेण महीयसा अतिमहता अति प्रगल्भया भक्त्येति भावः। अधोक्षजं भगवन्तं सम्यगेति प्राप्नोति तच्चेष्टामयो भवतीति भावः।

जव भक्त श्रीहरि की लोक पावनी लीला का श्रवण करता है तो आनन्द से हृदय भर जाता है, पुलक अश्रु गदगदायमानवचन से उत्कण्ठित होकर श्रीहरिनाम का गान करता एवं आनन्द से नृत्य करता रहता है, ग्रह ग्रस्त की भाँति हंसता रहताहै, गतत्रप निर्ल्लज्ज होकर इस पदका सम्बन्ध सभीक्रियाओं के साथ हैं, उस समय भक्त निखिल दुर्वासना से अपने को मुक्त पाता है, एवं श्रीहरि की चेष्टा लीला में तदाकारचित्त हो जाता है, वीजानुशय कर्म वासना भीज्वल जाती है, प्रोढ़ भक्ति से हृदय परि पूर्ण हो जाता है, उस समय

श्रीभगवान् का अनुभव साक्षात् रूप में होता है।

एवं ग्रहग्रस्तवद् व्यवहरेदित्याह।

वृद्धो बालकवत् क्रीड़ेत् कुशलो जड़वच्चरेत्
वदेदुन्मत्तवद्विद्वान् गोचर्य्यांनैगमश्चरेत् ॥

नैगमो वेदनिष्ठत्वाद् भक्तिनिष्ठः।

ग्रहग्रस्त के समान आविष्ट व्यवहार उस समय भक्त का होता है, वृद्ध होकर भी बालक के समान सरल व्यवहार करे, कुशल होकर भी जड़ कीभाँति व्यवहार करे, विद्धान् होकर भी उन्मत्त के समान कहे, एवं समस्त व्यवहार में शास्त्रीय भक्ति आचरण सम्पन्न होवे।

एतदेव प्रपञ्चयति भगवद् वाक्येन—

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तोवानपेक्षकः
सलिङ्गानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः ॥

इसका विशेष विवरण भगवद् वाक्यसे दिखाते हैं, ज्ञान निष्ठ हो अथवा मुक्ति के प्रति अनादरकारी हो वैराग्यवान्–अथवा मेरा भक्त हो, आश्रमोचित चिह्न के प्रति महत्त्व न रखकर उपासनालक्षण शरणागत धर्म के अनुरूप आचरण करे, काम्य विधि निषेध का अधीन न वने।

एवं भक्ति परिणामे तदनन्तरं प्रेम भक्तौ सत्यां प्रथमतः प्रेम सुखोन्मादो जायत इति व्यञ्चकावस्था विशेषमाह त्रिभिः—

मत्तसिंह समोल्लासो मत्तमातङ्गवद्गतिः
आनन्दाश्रुगलद्धारः सर्वाङ्गपुलकोद्गमः
सर्वाङ्ग कम्पनं हास्यं सर्वाङ्ग स्वेदउद्गमः।
स गद्गदवद्वाणी स्तम्भनं वाह्यविस्मृतिः
नृत्यं सर्वमनो हारि मूर्च्छानुमोदनं क्वचित् ॥

इस प्रकार भक्ति की परि पाकदशामें प्रेम भक्ति होने पर प्रेम

सुखोन्माद अवस्था होतीहै, तीन श्लोकों से उसका विवरण कहते हैं,

मत्त सिंह की भाँति उल्लास, मत्तमातङ्ग के समान गति सर्वाङ्गमें पुलक,नेत्रमें अविरल प्रेमाश्रु सर्वाङ्गमें कम्पन हास्य,सर्वाङ्ग में स्वेद उद्गम, गदगदवाणी, स्तम्भ,वाह्य विस्मृति, सर्वमनोहारिनृत्यं एवं मूर्च्छा अवस्था होती है।

एवं सुखमनुभूय वाह्यं तुच्छमिव विहाय प्रेमचेष्टां कुर्वतीत्याह भगवद्वाक्येन—

मच्चित्तामद्गत प्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥

इस प्रकार प्रेम भक्ति सुख अनुभव से वाह्य सुख का परित्याग अति तुच्छ वुद्धि से हो जाता है, इस का उदाहरण श्रीभगवत् वाक्ये से देते हैं।

भक्त गण मत् चित्त मद्गत प्राण होकर परस्पर मेरी कथा की आलोचना करते हैं, मेरी गुणानुवर्णन भी नित्य करते रहते हैं, एवं उससे सन्तुष्ट रहते हैं और आनन्दित भी होती हैं।

एवं प्रेम भक्त्या व्यवहरत्सु तेषु केन प्रकारेण प्रेम भक्ति र्वद्धते सुस्थायते चेति विचारो जायते।

इत्याह भगवद्वाक्येन—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि वुद्धियोगं तं येन मामुपयान्तिते ॥

प्रेम भक्तिसे भगवद् एवं भगवत् सम्वन्धि समस्त जनों के साथ व्यवहार करने पर किस प्रकार से प्रेम भक्ति की वृद्धि होती, एवं सुस्थिरा होगी इसका विचार पूर्वक निर्णय देते हैं, श्रीभगवद्वाक्य से।

जो लोक प्रीतिपूर्वक निरन्तर एकाग्र भावसेमेरा भजन करता है, उसको मैं वुद्धियोग अर्थात् प्रेम भक्ति प्रदान करता हूँ जिससे वह मेरी सेवा कर सकेगा।

एवं प्रेम गाम्भीर्य्येण व्यवहरत्तु तेषु भगवता विशेषेणानुग्रहः

क्रियत इत्याह भगवद्वाक्येन—

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ।

इस प्रकार निविड़ प्रेमात्मक व्यवहारकारियों को श्रीभगवान् विशेष अनुग्रह भी करते हैं, इसका संवाद श्रीभगवद् वाक्यसे देतेहैं ।

उसको अनुग्रह करने के लिए मैं उसका अज्ञानज तम को नाश कर देता हूँ मैं उसके हृदय में वास कहता हूँ एवं उज्ज्वल प्रेमानुभूति रूप ज्ञान प्रदीप से हृदयकाअन्धकार को सर्व्वदा नाश करतारहताहूँ ।

एवं प्रेम परिणामे निरवधि कृष्णरसनिमग्नो यथा सुखं श्रवण कीर्त्तनादिना व्यवहरेत् तत्र यद्यपि कार्य्याकार्य विचारेण व्यवहारो वर्त्तते तथापि गुणदोष युक्ता वुद्धि र्न भवतीत्याह—

दोषवुद्ध्योभयातीतो निषेधान्न निवर्त्तते ।
गुण वुद्ध्या च विहितं न करोति यथार्भकः ॥

सनिषेधात् दोषवुद्ध्या न निवर्त्तते । गुणवुद्ध्या विहितं न करोति, उभयातीतश्च दोषगुणाभ्यामतीतो वालक इव किन्तु स्वभाव वुद्ध्या विहितं करोति निषिद्धं नाचरति । नतु गुण लोभाद् दोषभया द्वेति तात्पर्य्यार्थः ॥

इस प्रकार प्रेम भक्ति की निविड़ता से कृष्ण प्रेमरस निमग्न मानस होकर सुख पूर्वक श्रवण कीर्त्तनादि द्वारा भक्ति अङ्गका आचरण करे, वहाँ पर भी कार्य्याकार्य कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का भी व्यवहार रहता हैं, तथापि गुणदोष युक्तप्रवृत्ति निवृत्ति नहीं होती है, उसको दिखाते है मायातीत होने के कारण दोष वुद्धिसे निषिद्धसे निवृत्त नहीं होता है, गुण वुद्धि से भी उत्तम कार्य नहीं करता है, किन्तु वालक की भाँति स्वाभाविक रूप से ही कार्य्याकार्य का आचरण करता है ।

निषेध है इसलिए निषिद्ध कार्य नहीं करता है, ऐसा नहीं गुण वुद्धि से भी विहित का आचरण नहीं करता है, गुणदोष से अतीत

होकर वालकके समान आचरण सरलतासे करताहै, किन्तु स्वभावतः ही विहित करता एवं निषिद्धाचरण नहीं करता है, गुण के लोभसे एवं दोष के भयसे नहीं करता यही तात्पर्य्य है।

इदानीं प्रकरणार्थमुपसंहरति-

आदौ श्रद्धा भवति निविड़ा वैष्णवस्पर्शयोगात्
कृष्णे लीलामय विलसिते तद् गुणेवानिकामम् ।
तस्मादार्त्तिस्तदनुकृपया पूर्ण आवेश एव
तस्मात् प्रेमाभवति मधुर प्रीति भावैकगम्यः ॥

तस्मात् सर्व साधनसाध्य ब्रह्मादिभिरण्वेषणीया प्रेम लक्षणा भक्ति र्भवतीति सङ्कलितार्थः ।

सम्प्रति प्रकरण समाप्त करने के लिए सारार्थ कहते हैं-सत् वैष्णव सङ्गसे प्रथम शास्त्र एवं गुरु वाक्य में महत्त्व वृद्धि होतो है, लीलामय करुण श्रीकृष्ण में उनकी भुवन पावन लीलामें, उनके गुणों में यथेष्ट महत्त्व वृद्धि होती है। इससे आर्त्ति उत्कण्ठा होती है, और उनकी कृपासे पूर्ण आवेश होता है, इसके वाद ही मधुर प्रीति भाव गम्य ममत्त्व श्रीकृष्ण में होता है। अतएव सर्व साधन साध्य ब्रह्मादि द्वारा अन्वेषणीय भक्ति श्री कृष्ण तत्भक्त जन कृपासे ही होती है, यह संकलितार्थ है ॥

इदानीमुत्तम मध्यम सामान्यतो भागवतलक्षणमाह ।

सर्व भूतेषु यः पश्येत् भगवद् भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥

यः सर्व भूतेषु आत्मनो भगवद्भावं आत्मनोः स्वामिनो भावं पश्येत्, आत्मनि श्रीकृष्णे भूतानि प्राणिनो यदृच्छया जायन्ते चेति तत्र पश्येत् स भागवतोत्तमः ।

जो व्यक्ति प्रभु श्रीकृष्णके प्रति अपनी जैसी प्रीतिहै, वैसीप्रीति समस्त प्राणियों के प्रति भी करता है, वह उत्तम भागवत कहलाता

है, एवं प्रकृष्ट प्रिय श्रीकृष्ण के प्रति श्रीकृष्ण की कृपासे सव की प्रीति होती है, यह जो उत्तमरूपसे जानता है वह उत्तम भागवत होता है।

तथा–ईश्वरे तदधीनेषु वालिशेषु द्विषत्सु च ।
प्रेम मैत्री कृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥

यत्र यथा संख्येन वोद्धव्यम्। जो जन ईश्वर में प्रेम उनके अधीन जनमें मैत्री अज्ञ जनके प्रति कृपा, विद्वेषी व्यक्ति के प्रति उपेक्षाभाव रखता है, वह मध्यम भागवत होता है। प्रेम मैत्री कृपा उपेक्षा का अन्वय पूर्वोक्त ईश्वर, तदधीन जन, वालिश, द्वेषी, के साथ क्रमपूर्वक अन्वय है,–जानना होगा।

अर्च्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥

अर्च्चायां प्रतिमायां, तद्भक्तेषु वैष्णवेषु, अन्येषु अन्यजनेषु। श्रीहरिके विग्रह में श्रद्धा करता है, उनके भक्त वैष्णव, एवं अन्य जनों के प्रति श्रद्धा नहीं करता है वह कनिष्ठ भागवत हैं, प्रारम्भिकं भक्त है, जैसे प्रथम पाठशालाकाविद्यार्थी ॥

गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान् यो न द्वेष्टि न हृष्यति
विष्णोर्मायामिदं पश्यन् सवै भागवतोत्तमः ॥

देहेन्द्रिय प्राण मनोधियां यो
जन्माप्ययक्षुद् भयतर्ष कृच्छ्रैः।
संसार धर्मैरविमुह्य मानः
स्मृत्या हरे भागवत् प्रधानः ॥

जन्माप्ययौ देहस्य, इन्द्रियानां कृच्छ्रं अन्यत् यथासंख्यं वोध्यम् इन्द्रियों से इन्द्रियों के विषय ग्रहण कर जो जन विद्वेष एवं आनन्द भाव से अभिभूत नहीं होता है, श्रीविष्णु की माया से समस्त

रचित हैं, ऐसा जो अनुभव करता है, वह निश्चित रूपसे उत्तम भागवत है।

जो जन देह इन्द्रिय–प्राण–मन, वुद्धि के धर्म देह का जन्म विनाश, इन्द्रियों का क्लेशकरत्व, प्राण की क्षुधा, मन का भय, वुद्धि की तृष्णा प्रभृति जो संसार धर्मनामसे प्रसिद्ध है, उनसव धर्मों से वह मुग्ध नही होता है, श्रीहरि स्मृति का प्रभाव ही उनमें सर्वाधिक परिलक्षित होता वह प्रधान भागवत कहलाता है।

न यस्य जन्म कर्माभ्यां न वर्णाश्रम जातिभिः।
सज्जतेऽस्मिन्नहम्भावो देहे वै स हरेः प्रियः॥

जो जन जन्म कर्म वर्ण आश्रम जाति के द्वारा अपने में तदनुरूप अभिमानित्व का आरोपण नहीं करता है, वह इस अहङ्कारात्मक देह में रह कर ही भगवन् प्रिय होता है, भगवन् प्रिय का लक्षण क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है।

ननु भागवतानां जन्म कम वन्धनञ्च विद्यते, कथं नास्ति तत्राह पद्मपुराणे–

भगवदभक्तका जन्म कर्म वन्धन तो है ही, कैसे कहा गया है, कि भागवत का जन्म कर्म वन्धन नही है ? इसके उत्तर में पद्मपुराण के वचनों को उठाते हैं।

यथा सौमित्रिभरतौ यथा संकर्षणादयः।
तथा तेनैव जायन्ते मर्त्यलोके यदृच्छया॥
पुनस्तेनैव यास्यन्ति तद्विष्णोः परमंपदम्।
न कर्म वन्धनं जन्म वैष्णवानाञ्च विद्यते॥
एवं–निरपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनोगतव्यथः
सर्वारम्भ परित्यागी यो मे भक्तः स मे प्रियः
न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा,

सर्वभूतसमः शान्तः सच भागवतोत्तमः ।

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ।

अजात शत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ।।

जिस प्रकार सौमित्रि भरत सङ्कर्षण प्रभृति मर्त्य लोक में यदृच्छासे आविर्भू त होते रहते हैं, एवं पुनर्वार उसी स्वरूपमें ही विष्णु लोक को जाते हैं, वैसे वैष्णवों का जन्म, कर्मवन्धन निमित्त से नहीं होता है, ।

जो जन निरपेक्ष, शुचि दक्ष, उदासीन, मोहवर्ज्जित, अपने लिए सर्व प्रकार मठमन्दिर धर्मानुष्ठान शिष्यवृत्ति का आरम्भ परित्यागी होकर मेरा भक्तहोता है, वह ही मेरा प्रिय है। जो व्यक्ति अपना पराया, भेद वुद्धि धन जन शरीर प्रभृति में नहीं रखता है, और प्राणि मात्रके अनुकूल आचरण में रत एवं तृष्णा वर्जित होता है, वह जन उत्तम भागवतहै। तितिक्षु करुण, प्राणि मात्रका सुहृद् अजात शत्रु देह के उद्देश्यसे शत्रुता न करना,तृष्णा वर्ज्जित साधुगण साधुयों के भूषण स्वरूप हैं।

इदानीं भक्तानां सर्वतो विशेषोत्कर्षमाह श्रीभगवद्वाक्येन—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनि र्नशङ्करः ।

न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथाभवान् ।।

ब्रह्मा पुत्र होने पर भी प्रिय नहीं है सखा होने पर भी शङ्कर प्रिय नहीं है, भाई होनेपरभी संकर्षण, पत्नी होकरभी श्री एवं आत्मा ये सव मेरा प्रिय नहीं हैं, भक्त आप जैसा मेरा प्रिय हैं। इस प्रकार श्रीभगवानने भक्तो का सर्वाधिक रूपसे उत्कर्ष कहा है।

भजन्निति वक्तव्ये उद्धवं प्रति अति प्रेम्ना भवानित्युक्तं जगत् पावनत्वमाह श्रीभगवद्वाक्येन—

वाग्गदगदा द्रवते यस्य चित्तं

रुदत्यमीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।

विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥

जिस का चित्त द्रवित है, वाणीगदगदायमान है, पुनः पुनः श्रीप्रभुकी उत्कण्ठासे रोदन करताहै, कभी कभी हँसता भी है, लज्जा की छोड़कर ही कभी गाता है, कभी नृत्य करता रहता है, इस प्रकार भक्ति युक्त भक्त भुवन को पवित्र करता है ।

एवं—यः कश्चिन् वैष्णवो लोके मित्थ्याचारोह्यनाश्रमी पुनाति सकलान् लोकान् सहस्रांशुरिवोदितः ॥ एवं अपिचेत् सुदूराचारो भजते मामनन्यमाक् साधुरेव स मन्तव्यः सम्यक् व्यवसितोहि सः । अतिशयेन दुराचारोऽपि अनन्यभाक् सन् यदि मां भजते स साधुरेव मन्तव्यः ज्ञातव्यः । हि यस्मात् स एव सम्यक् व्यवसितः शोभन व्यवसायं कृतवान् इत्यर्थः ।

अनाश्रमी एवं मित्थ्याचार परायण वैष्णव भी सूर्य्यके समान सकल लोक को पवित्र करते हैं । और भी—सुदुराचारी होकर भी यदि वह अनन्यभाव से मेरा भजन करता है तो उसको साधु ही जानना चाहिये क्यों कि उसने जो भजन करने का निश्चय किया है, वह अतिशय शोभन निश्चय है ।

एवं—चाण्डालोऽपि मुनिश्रेष्ठो विष्णुभक्तोद्विजोत्तमः हरिभक्ति विहीनस्तु द्विजोऽपि श्वपचाधमः ॥ चाण्डाल होकर भी यदि वह विष्णु भक्त होता है तो वह सर्वश्रेष्ठहै, हरिभक्ति विहीन उत्तमब्राह्मण भी श्वपच से भी अधम होता है ।

एवं जात्यादि नैरपेक्ष्येण भक्तस्य पूज्यत्वमाह भगवद्वाक्येन—

न मे भक्त श्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः तस्मैदेयं ततो ग्राह्यं सच पूज्यो यथा ह्यहम् ॥ जात्यादि की अपेक्षा न रखकर ही भक्त सर्वाधिक सर्वत्र पूज्य होता है—स्वयं श्रीभगवान् कहते हैं-

न मे भक्त श्चतुर्वेदी भद्भक्तः श्वपचः प्रियः ।
तस्मै देयं ततोग्राह्यं स च पूज्यो यथाह्यहम् ॥

चतुर्वेद के ज्ञाता ब्राह्मण मेरा प्रिय नहीं है, श्वपच यदि मेरा भक्त होता है तो वह मेरा प्रिय एवं पूज्य है, वह उत्तम दान पात्र है, जैसे मैं हूँ। इसकी ही दान करना चाहिये, एवं उससे ग्रहण भी करे।

एवं भूम्याद्यमङ्गल नाशकत्वमाह—

वहुधोत्सिध्यते राजन् विष्णु भक्तस्य नृत्यतः।
पद्भ्यां भूमेर्दिशो दृग्भ्यां दोर्भ्यां चामङ्गलं दिवः ॥

भूमि प्रभृति के अमङ्गल कोभी नाश करते हैं—

हे राजन्! विष्णु भक्त के नृत्य से अनेक प्रकार अमङ्गण नाश होते हैं, चरण सञ्चालन से पृथिवी का अमङ्गल नेत्र से चतुर्द्दिक का अमङ्गल, वाहुद्वय उठानेसे स्वर्ग का अमङ्गल नाश होता है।

एवं विशेषमाह—

महा पातकिनो ये च युक्ता वा सर्व पातकैः
ईक्षिता भगवद्भक्तै र्लभन्ते परमं पदम् ॥

महापातक एवं सर्व पातक युक्त व्यक्ति भी भगवद् भक्त की दृष्टि में आने से परम पदको प्राप्त करलेता है।

एवं पित्राद्युक्त सविशेष-परस्पर- प्रार्थनीयमाह—

आस्फोटयन्ति पितरो नृत्यन्ति च पितामहाः।
मद्वंशे वैष्णवो जातो झटित् सन्तारयिष्यति ॥

इस प्रकार पिता पितामह परस्पर प्रार्थना करते हैं कि-मेरी वंश परम्परा में वैष्णव होने पर सत्वर सवका उद्धार होगा।

एवं भक्तानां विषयासक्तत्वं वन्धाय न भवतीत्याह—

भगवद्वाक्येन-वाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयै रजितेन्द्रियः
प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयै र्नाभिभूयते ॥

अणुमात्रापि विष्णुभक्तिः प्रगल्भा-भवति। एवं भक्ति योगाद् विषयै र्नाभिभूयत इत्यर्थः।

भक्त विषयासक्त होने पर उससे उनका वन्ध नहीं होता है, भगवद् वाक्यसे इसको प्रमाणित करते है–मेरा भक्त विषयों से अभिभूत होने पर भी उत्कट भक्ति उसको विषय मोह से वंचा लेती है। यहाँपर अणुमात्र भी भक्ति उद्धार के लिए यथेष्ट होती है, इस प्रकार भक्ति के योगसे भक्त विषयग्रस्त नहीं होता है।

एवं भक्तानामभिलाषोऽपि अभिलाषान्तराय न कल्पते इत्याह भगवद् वाक्येन—

न मय्यावेशित धियां कामः कामाय कल्पते।

भर्ज्जिता क्वथिता धाना प्रायो वीजाय नेष्यते॥

इस प्रकार भक्तों की अभिलास अन्याभिलाष नहीं होती है, श्रीभगवान् स्वयं हि इसको कहते हैं। मेरे प्रति जिसकी वुद्धि आविष्ट हो गईहै, उसकी इच्छाको काम नहीं कहा जाताहै, कारण जिस धान की भूँजने के वाद कूट कर वोया जाता है, उससे अङ्कुर कभी भी नहीं होता है।

मयि आवेशिताधी यैँ स्तेषां भक्तानां अभिलाषे सति मदुपभोग मात्रेण तन्निवृत्ते रन्यदपि कामनान्तरं न कल्पत इत्यर्थः। एतदपि भगवतो भक्त कामिता पुरकत्वात् सम्पद्यते। अन्येषामभिलाषे तत् सद्दश कामनान्तरं सं कल्पते तदपि भोगाय भवतीति वाक्यार्थः॥

मेरे प्रति जिस भक्त की वुद्धि आविष्ट होगई है, उसकी यदि विषयाभिलाष होती है, तो उस विषय का उपयोग मेरे उपभोग के निमित्त होने के कारण वह अन्याभिलाष का वीज नहीं वनता है, यह भी भगवान् स्वयं भक्त की कामना को जगाकर पूरण करतेहैं, और भक्तवत्सलता को प्रकट करते हैं। भक्त भिन्न जन की जो विषयों की कामना होती वह कामना संसार के लिए वीज वपन करती जातीहै।

यद्येवं भक्त कामिता सम्भावनायां कथञ्चित् गर्हिताचरणे कथं निस्तारः स्यादित्यत्राह—

यदि दैवात् प्रमादाद्वा योगिकर्म्म विगर्हितम्

योगेनैव दहेदेनो नान्यो यत्नः कदाचनः ।।

यदि भक्त की विषय कामना होती रही तो कदाचित् गर्हिता चरण की सम्भावना होगी उससे भक्तका कैसे निस्तार होगा ? इसका उपाय कहते हैं-दैवात् एवं प्रमाद से इच्छा पूर्वक नहीं यदि भक्त का कभी विगर्हित कर्माचरण भी हो जाता है, तो भक्ति योग से ही उस पापको दग्ध करदेना अवश्यक है, अन्य पापनाशक अनुष्ठान न करे। ननु भक्तानां स्रक्चन्दनाद्युपभोगः कथमुपपद्यते इत्यत्राहउद्धववाक्येन-

त्वयोपभुक्त स्रग्गन्ध वासोऽलङ्कार चर्च्चिताः

उच्छिष्ट भोजिनो दासा स्तवमायां जयेमहि ।।

भक्ति के ग्रक् गन्ध चन्दनादिका उपभोग कैसे सम्भव होगा ? इसको उत्तर में उद्धव जी के वाक्य द्वारा प्रमाणित करते हैं, तुम्हारे धारण किये हुये मालाचन्दन वस्त्र भूषणादि प्रसादी द्रव्य से हम सव दासजन भूषित होकर तुम्हारी माया को जित लेंगे।

एवं भगवद् भक्तस्तावत् स्वयमीश्वर इत्याह भगवद् वाक्येन-

तीर्थाण्यश्वत्थ तरवो गावोविप्रास्तथाभुवि ।

मद् भक्ताश्चेति विज्ञेयास्तनवो ममपञ्चधा ।।

तेषां मध्ये च सर्वेषांपवित्राणां शुभात्मनां ।

मम भक्त विशिष्यन्ते स्वयमाविद्धि तान्बुधः ।।

स्वयं ईश्वर ही भगवद् भक्त होते हैं, भगवद् वाक्यसे प्रमाणित कर रहे हैं,—

तीर्थ सकल, अश्वत्थ वृक्ष, गो, प्रिय, एवं भक्तगण इस पृथिवी में ये पाचों मेरा अभिन्न तनु है। उनसवों के मध्य में शुभात्मा परम पावन भक्त जन मैं ही होता हूँ।

अतएव तेषां सेवातिदुर्ल्लभेत्याह—

दुरापाह्यल्पतपसः सेवा वैकुण्ठवर्त्मसु ।

यत्रोपगीयते नित्यं देवदेवो जनार्द्दनः ॥

वैकुण्ठस्य विष्णोर्वर्त्मसु मार्गभूतेषु महत्सु यत्रयेषु भक्तेषु ।

अतएव भक्त की सेवा अति दुर्ल्लभ है, अल्प तपस्या सम्पन्न व्यक्ति के लिए भक्त सेवा अत्यन्त दुर्ल्लभ है; इनका ही निरन्तर भक्त वत्सल श्रीजनार्द्दन का कीर्त्तन होता रहता है,

एवं तेषां स्मरणादेव शुद्धिफल माह–येषां संस्मरणात् पुंसां सद्यः शुद्ध्यन्तिवै गृहाः, किं पुनर्दर्शन स्पर्श पाद शौचासनादिभिः ॥ इस प्रकार भगवद् भक्त जन का स्मरण से ही शुद्धि होती है--जिनसव के स्मरण से ही सद्य गृहकी शुद्धि ही जाती है, दर्शन स्पर्श पादशौच आसन प्रभृति से तो सुतरां शुद्धि होगी ।

एवं तेषां गुणानुकीर्त्तनं कर्त्तव्य मित्याह—

मल्लिङ्ग मद्भक्तजन दर्शन स्पर्शनार्च्चनं ।
परिचर्य्यास्तुति प्रह्वोगुण कर्मानुकीर्त्तनम् ॥
परिचर्य्या सेवा, प्रह्वः आज्ञाग्रहणं ।

श्रीभगवान् का आदेश है कि--भक्तजन के गुण कर्मों का अनुकीर्त्तन करें । मेरे स्वरूप मेरे भक्त जन हैं, उनका दर्शन स्पर्श अर्च्चन परिचर्य्या सेवा, प्रह्व आज्ञा ग्रहण व गुण कर्म का अनुकीर्त्तन करे ।

तेषां सेवाफलमाह—

सत् सेवया भगवतः कूटस्थस्य मधुद्विषः
रति रासो भवेत्तीव्रः पादयोर्व्यसनार्द्दनः ॥

सत् सेवया हरिकथा श्रवणादिना ततोमधुद्विष--पादयोः रति रासो प्रेमोत्सवः तीव्रो दुर्वारो भवेत् स्वाभाविको वा व्यसनं संसारं अर्द्दयतीति तथा ।

सत् सेवा का फल कहते हैं हरिकथा श्रवणादि द्वारा श्रीहरि के चरणारविन्द में प्रेमोत्सव दुर्वार रूपसे होगा । वे स्वाभाविक रूपसे ही संसार का नाश करते हैं ।

तथा—विष्णुपूजापराणान्तु शुश्रूषां कुर्वते तु ये, ते यान्ति विष्णु भवनं त्रिसप्त पुरुषान्विता । विष्णुपूजा परायण व्यक्ति की शुश्रूषा कारी जन कुलके इक्कीस पुरुष को साथ लेकर श्रीविष्णु भवन को पधारते हैं ।।

एवं वैष्णवाय जलान्नदातु: । फलमाह त्रिभि:—

जो विष्णु भक्तं निष्कामं भोजयेत् श्रद्धयान्वितः
त्रिसप्तकुल संयुक्तः स याति हरिमन्दिरम् ।।

विप्राणां वेदविदुषां कोटिं संभोज्य यत्फलम् । तत् फलं कोटि गुणितं संभोज्य विष्णुयोगिनम्, विष्णुभक्ताय यो दद्यात् निष्कामाय महात्मने, पानीयं वा फलं वापि स एव भगवान् हरि: ।।

इस प्रकार वैष्णव को जलान्नदान करने का फल कहा है—जो जन निष्काम विष्णुभक्त को श्रद्धापूर्वक भोजन कराता है वह इक्कीस कुलके साथ हरिमन्दिर को जाता है, वेदज्ञ कोटि ब्राह्मण को भोजन कराने से जो फल होता है, विष्णु भक्त को भोजन कराने से उसका कोटि गुण फल होता है, निष्काम विष्णु भक्त को भोजन जल अथवा फल दान करता है, वह श्रीहरि का प्रियहोता है ।

एवं सर्वदेवमयत्वञ्चाह भगवद्वाक्येन-भक्तानने वसेद्ब्रह्मा शिर-स्येववसाम्यहं । नाभौ च शङ्करो देवो: पदे गन्धर्व किन्नरौ । भक्त सर्व देवमय है, आनन में ब्रह्मा मस्तक में विष्णु नाभि में शङ्कर चरणों में गन्धर्व किन्नर निवास करते हैं,

अतएव वैष्णव स्थितौ सर्वदेवस्थितिरित्याह—

देव पूजा परो यस्य गृहे वसति सर्वदा
तत्रैव सर्वदेवाश्च हरिश्चैव श्रियान्वितः ।।

श्रीविष्णु सेवा परायण व्यक्ति जिसके घर में नित्य सर्वदा निवास करता है, वहाँपर श्रीहरि लक्ष्मी के साथ एवं सर्व देवता भी निवास करते हैं,

एवञ्च निःसीम महिमत्वमाह—

अद्यापि नहि जानन्ति महिमानं विरिञ्चयः ।
ध्यानेन परमेणापि हरिभक्तिशुभात्मनाम् ।

इस भक्त की निःसीम महिमा कहते हैं—मङ्गलमय श्रीहरि भक्त की महिमा अद्यावधि विरिञ्चि भी नहीं जानते हैं ।

किञ्च तद्दासानां किमप्यसाध्यंनास्तीत्याह—

यतीनां विष्णु भक्तानां परिचर्य्या परायणैः
ईक्षिताश्चापि गच्छन्ति पापिनोऽपि परांगतिम् ॥

श्रीहरिदास के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है । यति विष्णुभक्त की परिचर्य्या परायण की दृष्टि से ही पापी जन परम गति को प्राप्त करते है ।

एवं तेषु जातिवुद्ध्या व्यवहारतः पातकमाह ।

अच्चर्ये विष्णौ शिलाधी र्गुरुषु नरमति र्वैष्णवेजातिवुद्धि
र्विष्णो र्वा वैष्णवानां कलिमलमथने पाद तीर्थेऽम्वुवुद्धिः
विष्णौ तन्नाम्निमन्त्रे सकल कलुषहे शब्दसामान्यवुद्धिः
श्रीशे सर्वेश्वरेशे तदितर समधी यस्य वा नारकी सः ।
शूद्रं वा भगवद्भक्तं निषादं श्वपचं तथा
वीक्षते जाति सामान्यात् स याति नरकं ध्रुवम् ॥
नारायणैक निष्ठस्य या या चेष्टा तदर्पणं ।
यज्जल्पति सच जपस्तद्ध्यानं यन्निरीक्षणम् ॥
यत् पादाम्वुतुलं तीर्थं तदुच्छिष्टं सुपावनं ।
तदुक्ति मात्र मन्त्राग्र्यं तद्दृष्टमखिलंशुचिः ॥
भक्तिरष्टविधाह्येषा यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्त्तते ।

स विप्रेन्द्रो मुनिः श्रीमान् स यतिः सच पण्डितः ।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वैष्णवान् परितोषय ।

प्रसाद सुमुखो विष्णु स्तेनैवस्यादसंशयः ॥

वैष्णवों के साथ जाति बुद्धि लेकर व्यवहार करनेपर पातक होता है—पूज्य श्रीविष्णुविग्रह में शिलाबुद्धि, श्रीगुरुदेव में मनुष्य बुद्धि, वैष्णव में जातिबुद्धि, श्रीविष्णु एवं श्रीवैष्णव के चरणामृत में जल बुद्धि, कलि कलुष नाशक श्रीविष्णु के नाम एवं मन्त्र में शब्द सामान्य बुद्धि श्रीविष्णु के साथ अन्यान्य देववृन्द की समता बुद्धि जिस की होती है वह नारकी है। शूद्र निषाद श्वपच भगवद् भक्त की जाति बुद्धि से देखना नरक कारक है,

श्रीनारायणनिष्ठ व्यक्ति की चेष्टा, अर्पण कथन ध्यान, दृष्टि उच्छिष्ट पादजल प्रभृति समस्त अमृत तुल्य है, उनकी उक्ति ही श्रेष्ठ मन्त्र है उन के दृष्ट पदार्थ सब पवित्र होते हैं, ।

अष्ट विध भक्ति जिस म्लेच्छ में देखी जाती है, वह विप्रेन्द्र, मुनि,श्रीमान,यति,पण्डितहै,अतएव समस्त प्रयत्न से वैष्णव को सन्तोष करना परम आवश्यक है इससे प्रसन्नवदन श्रीविष्णु निःसंशयप्रसन्नहोंगे

तेष्वपराधे निस्तारो नास्तीत्याह भगवद्वाक्येन—

मय्यपराधो राजेन्द्र कल्पान्ते याति संक्षयं ।

मद् भक्तेष्वणुमात्रोऽपि न कल्पशतैरपि ॥

श्रीवैष्णव के निकट अपराध होने पर उस से किसी प्रकार निस्तार नहीं होता, है श्रीभगवद् वाक्यसे दिखाते हैं- हे राजेन्द्र ! मेरे प्रति अपराधतो कल्प के अन्त में विदूरित हो जाता है, किन्तु वैष्णव मेरे भक्त के समीप में यदि अणुमात्र भी अपराध होता है तो उसका क्षय शतकल्प में नहीं होता है।

एवं प्रकरणार्थमुपसंहरति भगवद्वाक्येन न द्वाभ्या।म्

वैष्णवान् भज कौन्तय मा भजस्वान्य देवताः ।

पुनन्ति वैष्णवाः सर्वे सर्वदेवानिदं जगत् ॥

विहाय कामान् परया च भक्तचया ।

भजस्य भक्तान् मम भक्तिहृष्टान् ।

ममैव बन्धून् परमार्थ युक्तान् ।

सदैव विष्णो हृदि सन्निविष्टान् ॥

विष्णो र्मम हृदि सन्निविष्टान् सर्वथैव मम हृदये सन्तीत्यर्थः ।

इति श्रीभगवद्भक्तिसारसमुच्चये भगवद्भजनभागवतलक्षण निर्णयं नाम पञ्चमविरचनम् ॥

श्रीभगवद्वाक्य के द्वारा प्रकरण समाप्त करते हुये कहते हैं, हे कौन्तेय वैष्णवों का भजन करो, अन्य देवता का भजन मत करो। वैष्णवगण जगत को पवित्र करते हैं, सर्व देवमय वैष्णवगण होते हैं,सकल कामनाको छोड़कर उत्तमाभक्ति द्वाराभक्तिप्रचारकमेरा एक मात्र परमार्थ बन्धु एवं मुझ श्रीविष्णु के हृदय में सदा निवास करने वाले वैष्णवों का भजन करो।

*** इति पञ्चम विरचन ***

अथ तावत् भगवत् सेवायामवश्यमेवविधिपूर्वकंद्रव्योर्पण विधानं कर्त्तव्यम् ।

तत्र प्रमाणमाह भगवद्वाक्येन—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्तचा प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामिप्रयतात्मनः ॥

यत्नवतो भक्त्युपहृतं भक्तिसंस्कारपूर्वकोपहृतं वस्त्वहमश्नामि

श्रीभगवत् सेवा में अवश्य ही विधि पूर्वक द्रव्यार्पण करना कर्त्तव्य है, भगवद् वाक्यसे उस को प्रमाणित करते हैं, श्रीभगवान् कहते हैं, पत्र, पुष्प, फल, जल, जो भी व्यक्ति भक्ति पूर्वक लाकर भक्ति पूर्वक अर्पण करता है, उस यतात्मा से उन सब वस्तु को भोजन

करता हूँ।

पत्र प्रभृति का अर्पण जो व्यक्ति भक्ति पूर्वक करता है, भक्ति संस्कार पूर्वक आनीत एवं अर्पित वस्तु का ग्रहण मैं उन प्रयतात्मा व्यक्ति से करता हूँ एवं भोजन करता हूँ।

एतदेव स्पष्टयति अण्वपुपाहृतं भक्तै र्भूर्य्येवपरिकल्पते अभक्तोपहृतं भूरि न मे तोषाय कल्पते ॥

प्रयतात्मभि र्भक्तै रूपहृतं द्रव्यं साक्षादेवाहमश्नामीत्यर्थः एवं प्रयत्नवद्भि र्भक्तैः कर्त्तव्यमिति कर्त्तव्यमिति कृतं वस्तु चैव परिगृह्यते इत्याह भगवद् वाक्येन।

नैवेद्यं पुरतोन्यस्तं दृष्ट्वैव स्वीकृतं मया।

रसं भक्तस्य जिह्वाग्रेणाश्नामि प्रयतात्मनः

उसको स्पष्ट रूपसे कहते हैं–भक्त द्वारा अणुमात्र भी वस्तु बहुत मानता हूँ किन्तु अभक्त द्वारा प्रदत्त भूरिवस्तु भी मेरी प्रसन्नता के लिए सक्षम नहीं है। प्रयतात्माद्वारा अर्पित वस्तु साक्षात् भोजन करता हूँ अतएव भक्त इस वाक्य का स्मरण कर ही सेवा करे, वस्तु ग्रहण के विषय में और भी कहते हैं– मेरे सामने नैवेद्य रखने पर में उसको दृष्टि से ही ग्रहण करता हूँ।

किन्तु भक्त प्रदत्त वस्तु का रस जिह्वा से लेता हूँ। क्यों कि वह प्रयतात्माहै।

किञ्चैतदेव महाप्रसादान्नं सर्वथैव भुञ्जीतेत्याह—

मुकुन्द लिङ्गालय दर्शने दृशौ।

तद्भृत्य गात्र स्पर्शेऽङ्ग सङ्गमम्।

घ्राणञ्च तत् पाद सरोजसौरभे

श्रीमत् तुलस्यारसनां तदर्पिते ॥

मुकुन्देत्यादि प्रसङ्गादुक्तं तदर्पित श्रीकृष्णभुक्तोच्छिष्टे

अन्ने रसनां जिह्वां नियुञ्जीत भुञ्जीतेत्यर्थः।

अतएवोक्तं उच्छिष्ट भोजिनो दासाः इति।

इस प्रकार महाप्रसादान्न का भोजन ही सर्वथा कर्त्तव्य है, इसका सदाचार दिखाते हैं, श्रीमुकुन्द विग्रह दर्शन के लिए नेत्र, श्री विष्णु भक्त गात्र स्पर्श के लिए अङ्ग नासिका श्रीविष्णु के चरणों में अर्पित श्रीतुलसी दल की सुगन्ध ग्रहण में एवं रसना को श्रीविष्णु अर्पित वस्तु ग्रहण के लिए नियुक्त थी। "मुकुन्द" इस वाक्यकेप्रसङ्ग से कहा गया है—अर्पित अन्न, अर्थात् श्रीकृष्णोच्छिष्ट अन्न ग्रहण करने के लिए रसना को नियोग करे, अर्थात् प्रसादी द्रव्य ही ग्रहण करे। इसलिए दासलक्षलमें कहागयाहै कि उच्छिष्ट भोजी ही दास होताहैं॥

एतदेवस्पष्टयति लघुभागवते—

हृदि रूपं मुखे नाम नैवेद्यमुदरे हरेः।
पादोदकञ्च निर्म्माल्यं मस्तके यस्य सोऽच्युतः॥
नास्ति च्युतं च्युतिर्यस्य स तथाभविष्ये—
यत्र यत्र परं तात प्राप्तं हरि निवेदितम्
तत्र तद्भक्षयेदेव नात्र कार्य्या विचारणा॥

इसका स्पष्टी करण करते हैं—लघु भागवत में कथित है, हृदय में श्रीकृष्ण रूप सुखमें श्रीनाम, उदर में श्रीहरि के नैवेद्य मस्तक में पादोदक एवं निर्म्माल्य होने से वह अच्युत होता है अर्थात् उसका कभी भी विनाश नहीं हैं। हे तात! जहाँ जहाँ भी श्रीहरिनैवेद्य मिले उसे भोजन करे, इस विषय में कुछ भी विचार न करे,।

एवं महाप्रसादे स्पर्श दोषो नास्तीत्याह—

विष्णोर्निवेदितान्ने च स्पर्शदोष न विद्यते।
यस्य सन्दर्शनेनैव नरो भवति पावनः॥

इस प्रकार महाप्रसाद में स्पर्श दोष नहीं है, इसको कहते हैं, विष्णनैवेद्य में स्पर्श दोष नहीं होता है जिसके दर्शन से ही मनुष्य

पवित्र होता है।

भविष्य पुराणे—

अन्त्यवर्णैर्हीनवर्णैः सङ्कर प्रभवैरपि ।

स्पृष्टं जगत्पतेरन्नं भुक्तं सर्वाघनाशनम् ॥

भविष्य पुराणमें उक्तहै–अन्त्यवर्ण हीनवर्ण संकर जाति द्वारा भी यदि जगत्पति श्रीकृष्ण नैवेद्य स्पर्श होता है, तथापि वह दुष्ट नहीं होता, उसका भोजन से समस्त पाप नष्ट होजाता है।

कुक्कुरस्य मुखाद् भ्रष्टं मदन्नं यदिजायते ।

शक्रस्यापि तद्भक्ष्यं भाग्यतो यदि लभ्यते ॥

कुकुर के मुख से गिरा हुआ विष्णुनैवेद्य भी अति पवित होता है, और इन्द्र का भी ग्रहणीय होताहै, उसका लाभ अति भाग्य से ही होता है।

तथाच स्कन्द पुराणे—

नोच्छिष्टं नावशेषञ्च हरेरन्नं प्रकीर्त्तितम् ।

स्तुतिवादमिदं मत्वा नरा नरकगामिनः ॥

स्कन्द पुराण में उक्त है, उच्छिष्ट एवं अवशेष दोष श्रीहरि नैवेद्य में नही होता है, इस को स्तुतिवाद मानने पर नरक होता है।

एवं वृहद् विष्णु पुराणे—

नैवेद्यं जगदीशस्य अन्नपानादिकञ्च यत् ।

भक्ष्याभक्ष्य विचारस्य नास्ति तद्भक्षणे द्विज ॥

श्रीजगन्नाथ के नैवेद्य भक्षण में भक्ष्याभक्ष्य विचार नहीं है, यह वृहद् विष्णु पुराण की उक्ति है। एवं लोभादिना भक्षण मात्रेण महापावनत्व माह स्कान्दे–भक्त्या लोभात् कौतुकाद्वाक्षुधा संयमनेन वा

आकण्ठ भक्षितं तद्धि पुनाति सकलां हसः भक्ति से लोभ से कौतुक से अथवा भूक्मिटाने के लिए भी यदि आकण्ठ भर देता है,

विष्णुप्रसाद से, तब उसका सब पाप नष्ट हो जाता है।

अथ दीक्षिता दीना मपि महापावनत्वाह—

व्रतस्था विधवाश्चैव सर्ववर्णाश्रमास्तथा।

तत् स्पर्शनेन पूज्यन्ते दीक्षिताश्चाग्नि होत्रिणः॥

दीक्षित् व्यक्ति के लिए भी महाप्रसाद महापावन है, ब्रतस्थ, विधवा एवं समस्त आश्रम धर्मरत, एवं अग्नि होत्री ब्राह्मण गण श्रीविष्ण नैवेद्य से पवित्र हो जायेंगे।

तथाच गरुड़ पुराणे—

न काल नियमो विप्रा व्रते चान्द्रायणे तथा

प्राप्त मात्रेण भुञ्जीत यदीच्छेन्मोक्ष मात्मनः।

गरुड़ पुराण में वर्णित है, विष्णु नैवेद्य ग्रहण करने के लिए व्रत चान्द्रायण आदि काल निर्णय नहीं है, प्राप्तमात्र से ही मुक्ति कामीव्यक्ति के लिए ग्रहण करना आवश्यक है।

एवं तेनैव पितृश्राद्धे देवार्च्चने कृते अधिक फलमाह—

विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्तरं

पितृभ्यश्चापि तद्देयं तदानन्त्यायकल्पते।

यः श्राद्धकाले हरि भुक्त शेषं

ददाति भक्त्या पितृदेवतानां।

तेनैव पिण्डांस्तुलसी विमिश्रा।

नाकल्प कोटिं पितरः सुतृप्ताः॥

श्रीविष्णु निवेदितअन्न के द्वारा देव एवंपितृपुरुषकी अर्च्चना करना चाहिये पितृलोक को निवेदित अन्न प्रदानकर अनन्त फल होता हैं, जो जन श्राद्धकाल में श्रीहरि प्रसादी अन्न देता है, उस से पिण्ड निर्माण कर प्रदान करने पर पितृपुरुषगण कल्प कोटि काल तक सुतृप्त होते हैं।

तथा रुद्रयामले—

पायसान्नेन यै र्दत्तं श्राद्धं पित्रे गयाशिरे ।

हरेरन्नेन तच्छ्राद्धमधिकं जायते ततः ।

श्रीहरि नैवेद्य पायसान्न द्वारा गया श्राद्ध करने पर वह सर्वाधिक फलद होता है ।

तथा ब्रह्माण्ड पुराणे–

ममोपभोग भोज्यानि ये प्रयच्छन्ति मत्पराः

पितृदेव द्विजातिभ्यस्ते यान्ति मम मन्दिरम् ॥

ब्रह्माण्ड पुराण में कथित है, मेराभक्त मेरा प्रसादी नैवेद्य को यदि पितृदेव एवं द्विजातियों को प्रदान करता है, तो वह मेराधाम प्राप्त करता है ।

किञ्च तद् भक्षणे विशेष फलमाह पद्मपुराणे—

व्रतोपवास नियमैः कृच्छ्र चान्द्रायनादिभिः

यज्ञै र्नानाविधैः पुण्यै र्जपहोमादिभिस्तथा

तुलापुरुषदानाद्यैः कोटिब्राह्मणभोजनैः

सम्यगाचरणै र्विप्रा यत् फलं लभते नरः ॥

तत् फलं सम वाप्नोति विष्णोर्निर्म्माल्यभक्षणात् ॥

पद्म पुराण में लिखित है--श्रीविष्णु प्रसादी नैवेद्य भक्षण करने से विशेष फल होता है—व्रत उपवास नियम कृच्छ्र चान्द्रायण नानाविध जलदान प्रभृति पुण्यात्मक कार्य, तुलापुरुष दान, कोटि बाह्मण भोजन प्रभृति का सम्यक् आचरण से जो फल होता है, वह फल श्रीविष्णु का प्रसादी नैवेद्य भोजन से होता है, ।

यथा पाद्मे—

नैवेद्यमन्नं तुलसी विमिश्रम्

विशेषतः पाद जलेन सिक्तम् ।

योऽश्नाति नित्यं पुरतो मुरारेः

प्राप्नोति यज्ञायुतः कोटि पुण्यम्

पद्म पुराण में लिखित है–श्रीविष्णु नैवेद्य चरणोदक से मिश्रित करभोजन जो जन करताहै, वहअयुतकोटि यज्ञका फल प्राप्तकरताहै।

तथा इन्द्रद्युम्नं प्रति भगवत् वाक्यम्—

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेव च निश्चितम् ।

भक्त्या ममान्नं मुक्त्वा तु सान्निध्यं मम गच्छति ।

एकतः सर्वतीर्थानां यत् फलं परिकीर्त्तितं,

तत् फलं समवाप्नोति कृष्णसिद्धान्नभक्षणात् ॥

इन्द्रद्युम्नके प्रति भगवद् वाक्य इस प्रकार है—सत्य सत्य सत्य यह सुनिश्चित सत्य जानना, भक्ति पूर्वक जो जन मेराप्रसाद भोजन कर मेरा निकट में आता है,वह नैवेद्य भक्षण से सर्व तीर्थों का फल प्राप्त कर लेता है, ।

एवं चिरस्थस्य महाप्रसादस्य महापावनत्वमाह—

चिरस्थमपि शुष्कं वा नीतं वा दूरदेशतः ।

यथा तथोपयुक्तं तत् सर्वपापप्रणाशनम् ॥

पुरातन एवं दूर देशसे आनीत जैसे तैसे वनाया हुआ भी महाप्रसाद सकल पापों को नाश करने में समर्थ हैं ।

एवं निन्दकानां महापातकत्वमाह स्कान्दे त्रिभिः ।

निन्दयित्वा ममान्नं तु वस्तुभावेन मानवः ।

भुङ्क्तेऽन्यथातु यो मोहात् कोटि कल्पान् स नारकी

ममान्नं निन्दते यस्तु ममनिन्दा करोति यः ।

मद्दर्शनेन यत् पुण्यं तत् सर्वं तस्य नश्यति ॥

ममान्ननिन्दकाः पापं भुञ्जानाश्च नराधमाः ।

मद्दर्शनं हि विफलं सत्यमेव सुनिश्चितम् ॥

महाप्रसाद निन्दा करने वाले का महा पातक होता है, यह संवाद पुराण का है— साधारण वस्तु वुद्धि से महाप्रसाद की निन्दा कर जो भोजन करता है, वह कोटि कल्प नारकी होता है, मेरा अन्न की निन्दा से मेरी निन्दा होतीहै, मेरा दर्शन से जो पुण्य होता है, वह भी नष्ट हो जाता है, मेरा अन्न निन्दाकारी नराधम होता है, वह पापतो भोगता ही है मेरा दर्शन भी उसका निष्फल होता है।

किञ्च देवादीनामति दुर्ल्लभत्वमाह —

इन्द्राद्या देवताः सर्वा मानुषीं तनुमाश्रिताः ।
भोजनं कुर्वते नित्यं मानुषाणान्तु का कथा ॥
यदन्नं पाचयेत् लक्ष्मी भोक्ता देवो जनार्द्दनः
प्राप्त मात्रेण भोक्तव्यं नात्रकालविचारणा ।
यदन्नं पाचयेल्लक्ष्मी भोक्ता च पुरुषोत्तमः

स्पृष्टास्पृष्टं न मन्तव्यं यथा विष्णुस्तथैव तत्॥

महाप्रसाद देवताओं के लिए भी दुर्ल्लभ है, इन्द्रादि देवतागण मानुषदेह धारण कर महाप्रसाद भोजन करते हैं, मानुष की तो वात ही क्या ? जिसका पाकस्वयं लक्ष्मी जी करती है, और भोक्ता स्वयं जनार्द्दन है, उसका प्राप्त मात्र से ही भोजन करना आवश्यक है, काल विचार न करें, एवं स्पर्श अस्पर्श दोष का विचार न करे। श्रीविष्णु के समान ही उनका प्रसाद होता है, ।

प्रकरणार्थमुपसंहरति द्वाभ्याम् ।

समर्पयेत् प्रयत्नेन तदन्नं यो द्विजन्मने
उभौ तौ दातृ भोक्तारौ विष्णोः सायुज्यमाप्नुतः ।

द्वि जन्मन इति उपलक्षणम्—

अम्वरीष नवं वस्त्रं फलमन्नरसादिकम् ।

कृत्वा विष्णूपभोग्यं तत् सदा सेव्यन्तु वैष्णवैः ॥

इति श्रीभगवद् भक्तिसारसमुच्चये प्रसाद महिमा निर्णयं नाम षष्ठं विरचनं ।

दौ श्लोकों के द्वारा प्रकरण समाप्त करते हैं—आदरपूर्वक जो जन महाप्रसाद द्विजाति को प्रदान करता है, वे दाता भोक्ता दोनों ही विष्णु सायुज्य प्राप्त करेंगे । द्विजाति शब्द उपलक्षण है--हे अम्वरीष ! नूतन वस्त्र फल अन्न रस प्रभृति श्रीविष्णु को निवेदन करके ही सदा वैष्णवगण ग्रहण करें ।

❊ इति षष्ठ विरचन ❊

——❊——

अथ तावत् पण्डितः कृष्ण कीर्त्तन विमुख कथं दृश्यते ?

यावता शास्त्र दृष्ट्या तदुपदशादन्ये निस्तरिष्यन्ति कथं तेषां मतिव्यत्ययः–उच्यते मूर्खो देहाद्यहंवुद्धिः पण्डितो यस्तु मोक्षवित् " इतिन्यायाद य एवमोक्षवित् स च पण्डितशब्देनोच्यते । सएव हरि कीर्त्तन विमुखः कदापि न भवेत् येतु पण्डितम्मन्यास्तेषामहङ्कार वशा न्मति व्यत्ययः स्यादेव । एवञ्चतेषां भक्तिव्याधातो भवतीत्याह ।

पुत्रदारादि संसारः पुंसाञ्च मूढ़चेतसां ।
विदुषां शास्त्र संसारः सद्योगाभ्यास विघ्नकृत् ॥

सद्योगो भक्तियोग स्तस्यानुशीलने विघ्नकारकइत्यर्थः । एतावता पण्डितोजनः पुत्र द्वारादि संसार–शास्त्र संसारभ्यामतिवद्धः सन्नव्यवहरेत् ॥

पण्डित जन कैसे कृष्ण कीर्त्तन विमुख होतेहैं ? इस प्रसङ्ग में विचार उठाकर समाधान करते हैं। शास्त्र दृष्टि से अपर को उपदेश पण्डितजन देते रहते हैं इससे उपदेश पालन करन वाले का उद्धार होता है, किन्तु पण्डितजन उद्धार नहीं होते हैं, इस का कारण क्या है, ? उत्तर में कहते हैं, देहादि में अहं वुद्धि जिसकी है, वह ही मूर्ख है, जो पण्डित होता है, वह मोक्ष को जानता है, अतएव इस नीति

से मोक्षवित् व्यक्ति ही पण्डित शब्द से कहेजाते हैं। वह हरि कीर्त्तन विमुख कभी भी नहीं होता है, जो लोक पण्डितम्मन्य है वह अहङ्कारके वश मति व्यत्यय प्राप्त करता है। इस प्रकार उनसव की भक्ति व्याधात होता है। मूढ़ व्यक्ति का पुत्र द्वारादि संसार होता है, पण्डित का संसार शास्त्र होता है, वह भक्ति अनुशीलन का वाधक है। सद् योग शब्द का अर्थ है-भक्ति योग, उसका अनुशीलनमें शास्त्र विघ्न कारक होता है। इस प्रकार पण्डित जन पुत्र द्वारादि संसार एवं शास्त्र संसार के वश में न होकर ही भक्ति का अनुशीलन करें।

ननु शास्त्र निष्ठैः कथं न ज्ञायते इत्यत्राह—

यथा खर श्चन्दन भारवाही भारस्यवाही नतु चन्दनस्य
तथैव मूर्खो वहुशास्त्रपाठी शास्त्रस्यपाठी नतु निश्चयस्य

निश्चय ज्ञानाभावात् किमपि न ज्ञायते-इत्यर्थः। शास्त्रज्ञ व्यक्ति कैसे सारवस्तु को नहीं जानता? उत्तर देते हैं, जैसे एक गधा चन्दन को ढ़ोता है, भारको ही वहता है, किन्तु चन्दन को नहीं जानता है, निश्चय ज्ञान का वहाँपर अभाव है।

ननु पण्डितम्मन्यैः संसार वासनावद्धैरशक्यत्वात् श्रवण कीर्त्तनादिकं न क्रियते, भवतु कथं कृष्ण वैष्णवयोर्द्वेषः क्रियते इत्यत्राह द्वाभ्याम्—

श्रिया विभूत्याभिजनेन विद्यया
त्यागेन रूपेण बलेन कर्म्मणा।
जातस्मयेनान्धधियः सहेश्वरान्
स्वतोऽवमन्यन्ति हरिप्रियान् खलाः॥

तथा—राजसा घोर सङ्कल्पाः कामुका अहिमन्यवः
दाम्भिका मानिनः पापा विहसन्त्यच्युतप्रियान्॥

पण्डितम्मन्य व्यक्तिगण संसार वासना वद्धहोने के कारण श्रवण कीर्त्तन वे सव नहीं करते हैं, किन्तु कृष्ण वैष्णव के प्रति विद्वेष

क्यों करते हैं, ? इसका उत्तर दो श्लोक से देते हैं।

धन विभूति ऐश्वर्य्य जन विद्या त्याग, रूप बल कर्म्म द्वारा अभिमान हो जाता है, और उससे वुद्धि अन्धी हो जाती है अतएव स्वाभाविक खल व्यक्तिगण विष्णु के साथ वैष्णव की निन्दा भी करते हैं। राजस घोर संकल्प कामुक, क्रोधी, दाम्भिक मानी पापी व्यक्ति गण वैष्णव को उपहास करते हैं।

किञ्च तेषां व्यवहरणमाह—

कर्मण्य कोविदाः स्तव्धा मूर्खाः पण्डितमानिनः

वदन्ति चाटुकान् मूढ़ा यथा माध्यागिरोत्सुकाः ।

यया माध्या गिरा उत्सुका हृष्टा भवन्ति, तया धनलोभात् पण्डितम्मन्यै र्जनः स्तूयते । कन्दर्पसुन्दरः, मुखचन्द्रः

भुज कल्पवृक्षेत्यादि ॥

वदन्ति तेऽन्योन्यमुपासित स्त्रियो

गृहेषु मैथुन्य परेषु चाशिषः ।

यजन्त्यसृष्टान्न विधानदक्षिणम्

वृत्त्यै परं घ्नन्ति पशूनतद्विदः ॥

उन सव का व्यवहार कहते हैं—कर्म में अनिपुण स्तब्ध, मूर्ख, पण्डित मानी मूढ़ व्यक्तिगण आपातत मधुर चाटु वाक्य कहते रहते हैं, । आपात रमणीय वाक्य शुनकर आनन्दित होते रहते हैं, धन के प्रति लालसा भी अत्यन्त होती है, और धनी लोक को कन्दर्प सुन्दर सुखचन्द्र भुज कल्प वृक्ष के समान कह कर स्तुति करते रहते हैं। वे लोक स्त्री के उपासक होते हैं, परस्पर एक हृदय होकर मैथुन धर्म का सेवन करतेहैं, अनिवेदित वस्तुद्वारा एवं दक्षिणा विहीन यज्ञ करते है, और यज्ञ कर्म में पशु इत्या भी करते हैं, ।

ननु पशु मारणे दूषणं नास्ति । यज्ञार्थे पशवः सृष्टा इत्यादि

वचन प्रामाण्यात् अनेक तपो लब्ध देहस्य सुखार्थं पशु मारण यज्ञादि विधानं सूचितं नेत्याह त्रिभिः।

यज्ञ के लिए ही पशु की सृष्टि हुई है, अतएव पशु हत्या करने पर पाप नहीं होता है, अनेक तपस्या के वाद मनुष्य देह प्राप्त होता है, उसके सुख के लिए पशु वधका विधान हुआहै, इस कथनका उत्तर तीन श्लोकों से देते हैं,—

अथ सतां भूतहिंसा निषेध मप्याह श्रीभागवते—

देव संज्ञितमप्यन्ते कृमि विट् भस्मसंज्ञितम्।

भूतध्रुक् तत् कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः॥

नरदेव संज्ञितमपि पश्वादिभि र्भक्षितं विट् संज्ञितम् दग्धं भस्म संज्ञितम्। अन्यथा कृमि संज्ञितम्। तत् कृते तदर्थं भूतध्रुक् सः किं स्वार्थं वेद, यतो निरयः, ततो किं स्वार्थं भवतीति परमार्थः।

सज्जन के प्रति भूतहिंसा का निषेध श्रीभागवत में है-देव संज्ञा प्राप्त होने के वाद भी कृमि त्रिटभस्म संज्ञाप्राप्त होते हैं राजा होकर भी इस प्रकार गति जव होती है, तव उस के लिए प्राणी हत्या करके पाप करना उचित नहीं हैं।

देहः किमन्नदातुः स्वं निषेक्तुर्मातुरेव वा

मातुः पितुर्वा क्रेतु र्वा वलिनोऽग्नेः शुनोऽपि वा

एवं साधारणं देह मव्यक्त प्रभवाप्ययम्

को विद्वानात्मसात् कृत्वा हन्ति जन्तुनृतेऽसतः

देह के सन्दर्भ में विचार करना आवश्यक है, देह किस का है, अन्नदाता, माता, पिता, मातामह का खरीदने वाला का, बलवान् का, अग्नि का कुक्कुरका किस का है, यह तो सर्वसाधारण का है, अत एव नश्वर देह के लिए विद्वान् व्यक्ति क्यों पाप करेगा।

एवमविधिपूर्वकयज्ञादिच्छलेन कथं परधनादिकं गृह्यते इत्यत्राह प्रह्लाद वाक्येन—

वित्तेषु नित्याभिनिविष्ट चेता

विद्वांश्च दोषं परवित्त हर्त्तुः ।

प्रेत्येह वाथाप्य जितेन्द्रिय स्त

दशान्तकामो हरते कुटुम्वी ।।

तथा– विद्वानपीत्थं दनुजाः कुटुम्वं

पुष्टान् स्वलोकाय न कल्पते वै ।

यः स्वीय पारक्य विभिन्नभाव–

स्तमः प्रपद्येत यथा विमूढः ।।

इस प्रकार अविधि पूर्वक यज्ञादिच्छल से परधनापहरण क्यों करता ? कहते हैं—धनोपार्ज्जनमें नित्य अभिनिविष्ट चित्त परवित्त अपहरण करने से दोष होता है जान कर भी करता है, मरणे के वाद स्व कर्म फल भोग तो होगा है, तथापि अजितेन्द्रिय व्यक्ति कुटुम्व पोषण के लिए अनेकानेक कुकृत्य करता रहता है ।

इस प्रकार जान कर ही हे असुरगण ! कुटुम्व पोषण के लिए अपनी गति को नहीं देखता है, वह मूढ़ अपना पराया ज्ञान से ही सव कार्य करता रहता है ।

विद्वानपि जानन्नपि स्वलोकाय आत्मपरमार्थाय स्वकीय परकीययो विगतो भिन्नभावो यस्य स तथा विमूढ़इव तमः संसारं प्रपद्येत । किञ्च धर्मादिनाशेऽपि ज्ञानं न भवतीत्याह—

कुटुम्व पोषाय वियन्निजायु

र्न वुध्यतेऽर्थं विहतं प्रमत्तः ।

सर्वत्र तापत्रय दुःखितात्मा

निर्विद्यते न स्वकुटुम्वरामः ।।

कुटुम्व पोषार्थं वियद् गच्छन् निजायु र्यस्य स तथा अर्थान् धर्मार्थ काम मोक्षान् विहितान् प्रमत्तः सन वुध्यते न जानाति ।

सर्वत्राधि मौतिकाधिदैविकाध्यात्मिक तापत्रयै र्दुःखितोऽपि न निर्विद्यते तस्य ज्ञानोत्पत्ति र्न भवतोति। स्व कुटुम्वे रमते नान्यत्रेत्ति स तथा।

कुटुम्व पोषण के लिए आयु चली जाती है, प्रमत्त होकर धर्म अर्थ काम मोक्ष का अनुष्ठान जानता ही नहीं है, सर्वत्र आधिमौतिक आधिदैविक आध्यात्मिक दुःख प्राप्त करता रहता है, तथापि निर्वेद नहीं होता है, अतएव उसका ज्ञान होता ही नहीं हैं, निज कुटुम्व में ही विभोर रहता है।

किञ्चतेषां दुःखानुत्पत्तौ सुखावाप्तिरेव ज्ञायते इत्याह—

अत्यन्त स्तिमिताज्ञानां व्ययायेन सुखैषिणां
भ्रान्तिज्ञानावृताक्षाणां प्रहारोऽपि सुखायते।
गृहेषु कूटधर्मेषु दुःखतन्त्रेष्वतन्द्रितः।
कुर्वन् दुःखप्रतीकारं सुखवन्मन्यते गृही।

कथमित्याह—

आत्मजायात्मजागार पशुद्रविण बन्धुषु
निरूढ़मूलहृदयमात्मानं वहु मन्यते॥

आत्मादिषु वद्धमूलं हृदयं यस्य स तथा। एवं आसन्न निधन मपि न दृश्यत इत्याह—

देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्यसत्स्वपि
तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति॥

दु ख न होने पर उनसव का सुख तो अवश्य ही होता है? कहते हैं—निविड़ अज्ञान ग्रस्त होनेके के कारण व्यायाभसे सुखी होने की इच्छा की भाँति उनसव का प्रहार से भी सुख उत्पन्न होता है। कुटुम्व पोषण में रत होकर दुःख को भी अनलस एवं जागरुक होकर सुख की भाँति मान लेता है, आत्म जाया आत्मज गृह पशुधन वन्धु आदि में निरूढ़ ममता स्थापन कर गृही अपने को धन्यवादार्ह

मानता है, इस प्रकार अपनी मृत्यु की भी नहीं देखपाता है.

देह अपत्य कलत्रादि आत्म सैन्य प्रभृति असत् होनेपर प्रमत्त होकर निधन को भी नहीं देखता है।

एवमाचरतः सर्वं नश्यति इत्याह—

एवं-कुटुम्व्यशान्तात्मा द्वन्द्वारामः पतत्रिवत्

पुष्णन् कुटुम्वं कृपणः सानुबन्धोऽवसीदति ॥

इस प्रकार आचरणकारी का सव कुछ नष्ट हो जाता है— इस प्रकार अशान्तात्मा द्वन्द्वाराम पक्षी के समान कुटुम्व पोषण में रत होता हैं।

अथ पण्डितम्मन्याः कृष्णाराधन विमुखाः सन्तु शास्त्रोपदेशा दन्यान् न निस्तारयिष्यन्ति-इत्यत्राह—

काल कर्म गुणाधीनो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः

कथमन्यांश्च गोपायेत् सर्पग्रस्तोयथा परम् ॥

पण्डिम्मन्य व्यक्तिगण कृष्ण विभूख तो होते ही है, शास्त्रोपदेश से भी अपर को उद्धार भी नहीं कर सकते, काल कर्म गुणाधीन पाञ्च भौतिक देह में अवस्थित होकर सर्पग्रस्त व्यक्ति जैसे दूसरेका उपकार कर नहीं सकता वैसे वह दूसरेको उद्धार कर नहीं सकता।

ननु तैर्वैष्णवाश्रयणेन विष्णु भक्तिः कथं न साध्यत इत्यत्राह-

नते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुं

दुराशया ये वहि रर्थ मानिनः ।

अन्धा यथान्धै रूपनीयमाना

स्तेपीशतन्त्र्यामुरुदाम्निवद्धाः ॥

वे लोक वैष्णव की शरण में आकर विष्णु भक्ति लाभ करने के लिए यत्न क्यों नहीं करते हैं—कहते हैं—वे लोक जड़ीय पदार्थ को वहुमानदेकर चलते हैं, दुराशय व्यक्ति गण श्री विष्णु को सम्मान प्रदान नहीं करते हैं, जैसे अन्धगण अन्धगण का मार्ग दर्शक होते हैं,

वैसे ही वे लोक श्रीविष्णु की माया से वद्ध होकर चलते रहते हैं।

प्रकरणार्थमुपसंहरति ।

मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा
मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानां
अदान्तगोभि विंशतां तमिस्रं
पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानां ॥

तस्मात् विषय सङ्ग दोषात् सर्वे न तं भजन्त इति भावः।

इति श्रीभगवद् भक्तिसारसमुच्चये कृष्णवैष्णवविमुख निर्णयं नाम सप्तमं विरचनम् ॥

प्रकरणार्थ समाप्त करने के लिए कहते हैं–श्रीकृष्ण में मति स्वत, एवं परत नहीं होती हैं, न तो दोनोंमिलकर ही सम्मच है, गृह व्रत की मति श्रीकृष्ण में होती ही नहीं है, गो की भाँति अन्धकार में वैठकर वह सांसारिक विपयों का चर्वित चर्वण ही करता रहता है। अतएव विषय सङ्ग दोषके कारणसवलोक कृष्णभजन नहीं करतेहैं।

❊ सप्तम् विरचन ॥ ❊

——:❊:——

अथ तावत् सर्व धर्माणां साध्यत्वाद् वैराग्यस्य श्रेष्ठतमत्वम् ॥

तद्विना भगवद्भक्तिं साधयितुं न शक्यते इत्यतो द्वयोः सह कारित्वपूर्वक वैराग्यनिर्णयं नाम विरचनमारभते। तत्र द्वयोः सह कारित्वमाह–

विरक्ति रहिताभक्ति र्भक्ति हीना विरक्तता ।
नसिद्ध्यति न सिद्ध्येत द्वाभ्यां द्वे साधयेन्नरः ॥

अथ तावद् वैराग्यं किं नाम, उच्यते, मित्थ्या प्रपञ्चेषु पुत्र दार गृहादिरूप संसार वासना विनाशपूर्वक मर्त्त्यलोको पभोगेषु वुध्या देह वाङ् मनसासक्तिनिवृत्ति रुच्यते, यावता गृहादि त्याग पूर्वक तीर्थादि वासो वैराग्यमित्युच्यताम्? सत्यम्।

वनेषु दोषाः प्रभवन्ति रागिणां
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रिय निग्रहस्तपः ।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्त्तते
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥

इत्यालोच्यासक्तिनिवृत्तिग्रहणं साधुक्त,मिति ।

अनन्तर सकल धर्म साध्य होने के कारण वैराग्य श्रेष्ठतम पदार्थ हैं, इस का निर्णय करते हैं–। वैराग्य के विना भगवद् भक्ति हो नहीं सकती है, इस लिए भक्ति एवं वैराग्य का सहकारित्व पूर्वक निर्णय प्रकरण का प्रारम्भ कर रहें हैं, दोनों की सहकारिता दिखाते हैं-विरक्ति रहित भक्ति, भक्ति रहित विराग सम्पन्न हो ही नहींसकता अतएव दोनों के द्वारा दोनों का साधन बुद्धिमान व्यक्ति करें ।

किसका नाम वैराग्य है ? उत्तर, मिथ्या प्रपञ्चमें पुत्र दारा गृहादि रूप संसार वासना विनाश पूर्वक मर्त्य लोकके उपभोग विषयों में बुद्धि द्वारा देह वाक्य मन की आसक्ति, निवृत्ति ही वैराग्य है। आसक्ति निवृत्ति कैसे हो सकती है ? कहते हैं—गृहादि को छोड़ कर तीर्थवास करने पर ही सीधा वैराग्य हो जायगा, सत्य है—

जिस का विषय में राग है उसका सव दोष वन में भी दिखाई देगा, और घर में पञ्चेन्द्रिय निग्रह करने पर वह यथार्थ तप होता है, जो जन अकुत्सित् कर्म में प्रवृत्त होता है ऐसा निवृत्त राग व्यक्ति के लिए गृह ही तपोवनहै । इस प्रकार विशेष आलोचना करके निर्णय हुआ कि आसक्ति निरोध होना है वैराग्य है।

कथमनेक यज्ञतपोलब्धानां पुत्रदार गृहादीनां संसार-वासना फलानां मिथ्या प्रपञ्चत्वमुक्त्वा आसक्तिनिवृत्तिरुच्यते इत्यत्राहद्वाभ्याम्

पुत्र दाराप्त वन्धूनां सङ्गमः पान्थसङ्गमः ।
अनुदेहं विपद्यन्ते स्वप्नो निद्रायुजो यथा ॥

अनुदेहं प्रतिदेहं काक शूकरादीनां देहं पुत्रदाराद्यो गच्छन्ति ।

सर्वं जन्मनि पुत्र दारादीनां निद्रायां स्वप्नवत् प्राप्तिरस्तीत्यर्थः ।

पुत्र दार वासना फल समूह अनेकानेक यज्ञदान तप आदि पुण्य कर्म से प्राप्त होते हैं उन सवको मिथ्या प्रपञ्च कह कर आसक्ति निवृत्ति कैसे कह सकते हैं—इस के उत्तर दो श्लोकों से देते हैं,

पथिक मिलन की भाँति पुत्र दार आप्त वन्धुयों का मिलन है, स्वप्न निद्रा में जैसे व्यक्ति अनेक पदार्थ का सङ्ग करतावे सव भी उसी प्रकार है। प्रति देहमें काक शुकरादि का देह भी पुत्र दारादि प्राप्त कर लेता है अतएव समस्त जन्म में ही स्वप्न के समान ये सव सङ्ग होता ही है,

किञ्च आसक्ति योगात् महा दुःखी भवेदित्याह—

मार्जार भक्षिते यादृक् दुःखंस्याद् गृह कुक्कुटे ।
नैतादृङ् ममता शून्ये कलविङ्केऽथ मूषिके ॥

आसक्ति के योग से ही महादुःखी मनुष्य होता है, गृह कुक्कुट को विल्ली खा जाने पर जैसा दुःख होता है, वैसा दुःख ममता शून्य मूषिक को कलविङ्क 'चिल' खा लेने पर नहीं होता है।

एवं तत्त्यागात् सुखी भवेदित्याह—

सामिषं कुररं जघ्नु, र्वलिनोऽन्येनिरामिषाः
तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत ॥

एवं आसक्ति परित्याग से ही मानव सुखी होता है। वलवान् आमिष लोभी व्यक्ति कुरर पक्षी को मारता है, निरामिष व्यक्ति आमिषको छोड़कर परम सुख का अनुभव करता है, ।

एवमाशात्यागात् सुखी भवेदित्याह—

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्
यथा संच्छिद्य कान्ताशां सुखं सुस्वाप पिङ्गला ॥

तस्मान्मूलच्छेदाच्छाखापल्लवादिवदासक्तिनिवृत्तेर्ममतादीनामभात्र इत्यर्थः ।

आशा त्याग से ही मानव सुखी होता है। आशा ही परम दु:ख का कारण है, और निराशा ही पर सुख है, कान्त प्राप्ति की आशा को छोड़कर पिङ्गला सुख से सोयी थी। अतएव आशारूप मूल को काटने पर पल्लवादि की भाँति आसक्ति चली जाने से ममता प्रभृति का अभाव हो जाता है, ।

नन्वेवम्भूतानां पुत्र दार गृहादीनां सम्वन्धे कथं निस्तारो भविष्यतीत्यत्राह—

कुटुम्ब्यपि न सज्जेत न प्रमाद्यते कुटुम्ब्यपि।
विपश्चिन्नस्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥

कुटुम्ब्यपि न प्रमाद्येत भगवदाराधने सावधानो भवेदित्यर्थः।

इस प्रकार पुत्र दार गृहादि से निस्तार कैसे होगा ? इसका उपाय कहतेहैं—कुटुम्वी में आसक्त न होवे, कुटुम्वी को लेकर पागल न वने, विद्वान् जन जो होने वाला है, उस नश्वरता को सामने देखे। कुटुम्वी को लेकर पागल न वन जाय, किन्तु श्रीभगवदाराधन में सावधान होवे।

एवं नोद्विजेत जनाद्धीरो जनश्चोद्विजयेन्नतु
अभिवादीं स्तितिक्षेत नाबलम्वेत कश्चन ॥

मनुष्योंके आचरण से उद्विग्न न होवे एवं मनुष्य को उद्वेग भी न देवे, अपवाद निन्दा को सहन कर किसी का आश्रय अवलम्वन ग्रहण न करे।

किञ्च विषयासक्तानां कृष्णाराधनमतिदूरे स्यादित्यर्थः–

विषयाविष्टचित्तानां कृष्णावेशः सुदूरतः।
वारुणीदिग् गतं वस्तु व्रजन्नैन्द्रींकिमाप्नुयात् ॥

विषयासक्त व्यक्ति के लिए श्री कृष्णाराधन करना अत्यन्त असम्भव है, विषयाविष्ट चित्त में कृष्णावेश असम्भव है, पूर्व दिगस्थ वस्तु पश्चिम दिक में ढूँढ़ने पर क्या मिल सकती हैं ?

नन्वासक्तियुक्तानां दूरे कृष्णावेशस्तिष्ठतु स्वधर्म्मेणैव निस्तारो भविष्यतीति ब्रह्मवाक्येन—

अह्नया पृतार्त्तकरणा निशिनिःशयाना ।

नाना मनोरथ धिया क्षणभग्ननिद्राः

दैवाहतार्थरचना मुनयोऽपि देव

युस्मत् प्रसङ्ग विमुखा इह संसरन्ति ॥

स्व धर्मादि द्वारा मननशीलाअपि कृष्ण प्रसङ्ग विमुखाः सन्तः पुनः पुन दुर्वासना युक्ते संसारे गच्छन्ति–इत्यर्थः । संसार में आसक्ति युक्त व्यक्ति का कृष्णावेश असम्भव हो, किन्तु स्व धर्माचरण से उसका निस्तार तो होगा ही ? उसका उत्तर ब्रह्म वाक्यसे देते हैं—दिवस में नाना मनोरथ सम्पन्न करने के लिए निरन्तर देहेन्द्रियमनः का प्रयोग कर थक जाते हैं, जब रात में सोते हैं, तब नींद भी नही होती है, अनेक मनोरथ उपस्थित होता रहता है, और क्षण क्षण में नींद टूट् जाती है, हे देव ! जो कुछ भी चेष्टासे वे लोक करते रहते हैं वे सभी दैवसे नष्ट होजाते हैं, इस प्रकार आप के प्रसङ्ग से विमुख जनगण पुनः पुनः शरीर को प्राप्त करने रहते हैं । स्व धर्मादि द्वारा मनन शील व्यक्तिगण भी कृष्ण प्रसङ्ग विमुख होकर पुनः पुनः दुर्वासना युक्त संसार में गिरते हैं ।

यद्येवं कथं निस्तारो भवतीत्यत्राह—

दिनं नक्तं प्रातः पुनरपिदिनं नक्तमनु च

प्रभातव्यावृत्तिः पुनरुदर पूर्त्तिः पुनरपि ।

गिरेत्येवं काले गलति परमायुः प्रतिदिनं

मिलत्येव श्रेयः श्रयति यति मर्त्यो यदुपतिम् ॥

ऐसा होने पर उन सब का निस्तारकैसेहोता ? कहते हैं–दिन, रात प्रातः काल, पुनर्वार वही दिन, रात, प्रभात, इस में उदर पूर्त्ति हो प्रधान कृत्य है, यह पुनः पुनः करना पड़ताहै, वातों वात प्रतिदिन

परमायु चली जाती है, इस से श्रेयः नहीं मिलती, यदि मानव यदुपति का आश्रय ग्रहण करता है, तव ही उत्तम श्रेयः मिलेगा ।।

एवं कृष्ण प्रसङ्गं विना कालोव्यर्थ इत्याह

आयु र्हरति वै पुंसा मुद्यन्नस्तञ्च यन्नसौ
तस्यर्त्ते यत्–क्षणोनीत उत्तमः श्लोक वार्त्तया ।।

तस्मात् सर्वथैव कृष्ण प्रसङ्गः कार्य इत्यर्थ. ।

इस प्रकार कृष्ण प्रसङ्ग विना काल व्यर्थ होता है, सूर्यदेव उदय अस्त के द्वारा निरन्तर मनुष्य की आयुः का हरण करते रहते हैं, उत्तम श्लोक श्रीकृष्ण की कथा से जो भी क्षण अतीत होता है, वह श्रेष्ठकर है, अतएव सर्वथैव कृष्ण प्रसङ्ग करना कर्त्तव्य है ।

यद्यपि सर्वविषयोपभोगादिकं कृत्वा पुत्रेषु भार्य्यां निःक्षिप्य वनं पञ्चाशतो व्रजेदित्यादि वचन प्रामाण्यात् प्राज्ञो वयस्तृतीयं

कृष्णार्पणं कर्त्तव्य मित्याह षड्भिः–

यद्यपि समस्त विषयोपभोग करने के पश्चात् पुत्र को भार्य्या रक्षाका भार देकर "पञ्चाशवर्ष आयु के वाद वन गमन करे" इस वचन प्रमाण से प्राज्ञ जन आयुः के तृतीय भाग में कृष्णार्पण कर्त्तव्य है, इस प्रकार युक्ति के उत्तर में कहते हैं;—

कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ।
दुर्ल्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ।।

प्रहलाद जी का कथन है कि कुमार काल से ही भागवत धर्म का आचरण अवश्य करे मानुष जन्म दुर्ल्लभ,एवं अर्थद तो है ही साथ ही अध्रुव भी है ।

एवं कथमित्यत्राह—

पुंसो वर्षशतं ह्यायुस्तदर्द्धञ्चाजितात्मनः
निष्फलं यदसौ रात्र्यां शेतेऽन्धं प्रापितस्तमः ।।

मुग्धस्य वाल्ये कैशोरे क्रीड़तो याति विंशतिः।
जरयाग्रस्त देहस्य यात्यकल्पस्य विंशतिः॥
दुरापूरेण कामेन मोहेन च वलीयसा।
शेषं गृहेषु सक्तस्य प्रमत्तस्यापयाति हि॥

क्यौं मनुष्य शरीर नश्वर है ? इसका उत्तर देते हैं, मानव के लिए एकशत वर्ष जीवित का है, अजितात्मा उसका आधा रात में सोकर विताता है, मुग्ध होकर वाल्य एवं कैशोर में विश वर्ष चले जाते हैं, जरा असमर्थ अवस्था में विशवर्ष जाते हैं। जो कुछ शेष वचता है वहदूरापूर काम, और बलवती आकाङ्क्षा से चला जाता है गृह में आसक्त एवं प्रमत्त होकर इस प्रकार समय चला जाता है।

एवं जीवस्य कालाधीनत्वमाह—

सञ्चित्वा कामवैरञ्च कामानामभितृप्तकम्।
विल्वीवनं समासाद्य मृत्योरालय मृच्छति॥
एवं मर्त्यः स्वकार्यं कुर्व्वीत पूर्वाह्णे, चापराह्णिकम्।
नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वास्य नवा कृतम्॥

तेनैतदुक्तं भवति कौमार प्रभृति यावज्जीवन पर्यन्तं भागवत धर्मानाचरेदित्त्यर्थः॥

जीव कालाधीन है– काम और वैर का संग्रह कर काम से सदा अतृप्त संसार का ग्रहण कर मरणालय की अभिलाष करता है, मानव के लिए चाहिये कि वह अपराह्ण का कार्य पूर्वाह्ण में ही करे मृत्यु, कार्य सम्पन्न हुआ है, अथवा नहीं इसकी प्रतीक्षा नहीं करती है, इस लिए ही कहा है-कुमार कालसे ही आरम्भकर शेष जीवन तक भागवत धर्म का आचरण करे।

तत्र व्यतिरेके निन्दामाह—

आहार निन्द्रा भय मैथुनञ्च

सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।

ज्ञानञ्च तेषामधिकं विशेषो

ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥

उसके व्यतिक्रम से दोष कहते हैं—आहार निद्रा भय मैथुन चार पशु और मनुष्य में समानरूपमें हैं, ज्ञान से ही मनुष्य पशु से पृथक् होता है, जो जन ज्ञान से हीन होता है वह पशु तुल्य है ।

कृष्णसाधन विधौज्ञान विशेष हीना इत्यर्थः । श्रीकृष्णाराधन कर्त्तव्य में ज्ञान विशेष हीन होने पर ही वह पशु तुल्य होता है ।

दुश्चेष्टिता अप्यरविन्दनामं

क्वचिद् भजन्ते जनवञ्चनार्थम् ॥

तथापि ते तस्य पदं लभन्ते ।

प्रीत्या भजन्तः किमु साधुशीलाः ॥

साङ्ख्य योगोऽथ वैराग्यं तपो भक्तिश्च केशवे ।
पञ्च पर्वेति विद्येयं यया विद्वान् हरिं विशेत् ॥

दुष्ट चरित्र वाले व्यक्तिगण मानव को ठग्नेके लिए अरविन्द नाभ भगवान् का भजन कर परमपदका प्राप्त करते हैं, और साधुशील व्यक्तिगण यदि प्रीति पूर्वक श्रीहरि का भजन करे तो अमृतलाभ सुनिश्चित है, इस में कहने का ही क्या है,

साङ्ख्य योग वैराग्य तप भक्ति श्रीकेशव के सम्वन्धान्वित होने पर उसको विद्या कही जाती है और इससे विद्वान् श्रीहरि को प्राप्त कर लेता है ।

अथ चतुःश्लोको

अहमेवास मेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम् ।

पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।

तद्विद्यादात्मनो मायां यथा भासोयथातमः ॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषुच्चावचेस्वनु ।
प्रविष्टान्य प्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्व जिज्ञासुनात्मनः ।
अन्वय व्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥

श्रीभगवान् श्रीकृष्ण वोले,-हे ब्रह्मन् सुनो तुम्हें शास्त्रीय ज्ञान, अनुभव रहस्य भक्ति सुगोप्य होने पर भी साधन के साथ मैं कहूँगा ।

स्वरूप से सत्तासे रूप गुण कर्म से मैं जैसा हूँ उनसव का ज्ञान तुम्हें मेरी कृपा से हो जाय। सम्यक् रूपसे उक्त विवरण कहने के लिए आरम्भ कर रहे हैं-सृष्टि के पहले मैं ही था उस समय स्थूल सूक्ष्म कार्य कारण अव्यक्त आदि कुछ भी पृथक् नहीं था सव ही मुझ में लीन थे, सृष्टि के वाद भी मैं ही रहता हूँ विश्व भी मैं ही हूँ, प्रलय में भी मैं ही रहता हूँ, अनन्त अद्वितीय ओर परिपूर्ण मैं ही हूँ।

वास्तव न होने पर भी जिसकी प्रतीति होती है, अथच अधिष्ठान की सात्यता से प्रतीति होती है स्वतन्त्रा उस की सत्ता नहीं है, जैसे अन्धकार द्विचन्द्र प्रभृति है उसको माया कही जाती है,

जैसे महा मूत समूह समस्त भूतो में प्रविष्ट होकर रहतेहैं, उस से अलग भी रहते हैं इस प्रकार मेरी सत्ता है। साधन कहतेहैं -इस विषयको पुनः पुनः जिज्ञासा कर जानना चाहिये मैं सर्वत्र सर्वदाअन्वय व्यतिरेक से स्थितहूँ। परम एकाग्रता के द्वारा उक्त कथन की धारणा एवं उपलब्धि करें ! निखिल सृष्टि कार्य में तुम कभी भी मेरी कृपासे मोह अभिमान को प्राप्त नहीं करोगे।

श्रीभगवानुवाच

ज्ञानं परम गुह्यं मे यद्विज्ञान समन्वितम्
स रहस्यं तदङ्गञ्च गृहाण गदितं मया ।

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः

तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥

एतौ पूर्वचतुर्णां प्रथमौ ज्ञातव्यौ

एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना

भवान् कल्प विकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥

द्वितीय स्कन्धे नवमाध्यायस्यैतानि पद्यानि ।

द्वितीय स्कन्ध के नवमाध्यायके ये पद्यसव हैं ।

एवं कृष्ण प्रसाद व्यतिरेकरण निन्दनमाहद्वाभ्याम्—

तद्दिनं दुर्द्दिनं मन्ये मेघाच्छन्नं न दुर्द्दिनम् ।

यद्दिनं हरिसंलापरस संलापरसपीयूषवर्ज्जितः ।

प्रहरोऽपि प्रहारः स्यात् दण्डो भवति दण्डवत् ।

क्षणं क्षीणं दिनं दैन्यं यत्र न स्मर्य्यते हरिः ॥

तस्मादनुक्षणं कृष्ण प्रसङ्गः कार्य्य इति वाक्यार्थः ॥

कृष्ण प्रसङ्ग को छोड़कर काल यापन करने से दोष होता है- मेघाच्छन्न दुर्द्दिन नहींहै, वह दिनही दुर्द्दिन है, जिस दिन हरि संलाप रस पीयूष वर्ज्जित है। प्रहर प्रहार के समान एवं दण्ड के समान होता है, क्षरण भी क्षीण दिन होता है, दीनता उस की नाम है, जव श्रीहरिस्मरण नहीं होता है। अतएव अनुक्षण कृष्ण प्रसङ्ग करना कर्त्तव्य है, वाक्यार्थ यह है।

प्रकरणार्थमुपसंहरति श्रीभगवद् वाक्येन ।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना

अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः ॥

अमानिना मानदेन--निरभिमानेन, सर्वेषां माननापुरःसर व्यवहार क्रियावतैव हरिः कीर्त्तनीयः ॥

इति श्रीनरहरि चरणारविन्द प्रोल्लसित श्रीलोकानन्दाचार्य्यं ग्रथिते भगवद् भक्तिसार समुच्चये ग्रन्थे वैराग्यनिर्णयं नामाष्टमं विरचनम् ॥

——※——

श्रीभगवद् वाक्य के द्वारा उपसंहार कर रहे हैं–तृण से भी सुनीच निरभिमान नम्र होकर तरु से भी सहिष्णु एवं स्वावलम्वि परोप कारी होकर, सर्वोत्तम होकर भी अपर से सम्मान की आशा को छोड़कर एवं सव को सम्मान देकर ही श्रीहरिनाम सदा कीर्त्तन करना एकान्त कर्त्तव्य है।

श्रीनरहरि सरकार ठाकुर चरणाश्रित श्रीलोकानन्दाचार्य प्रणीत भगवद् भक्ति सार समुच्चय ग्रन्थ का अष्टमविरचनसमाप्त ॥

सम्पूर्णोऽयं ग्रन्थ

※ श्रीगुरवे निवेदितमस्तु ※

——※——

शाके चन्द्रग्रहाकाशे ब्रह्मभाद्रे भृगोर्दिने
पञ्चम्यां शुक्लपक्षे च हरिदासेन भाषिता ॥
श्रीहरे दास संज्ञेन वृन्दारण्यनिवासिना
मानवानां प्रमोदाय भाषाव्याख्या कृतामया ॥
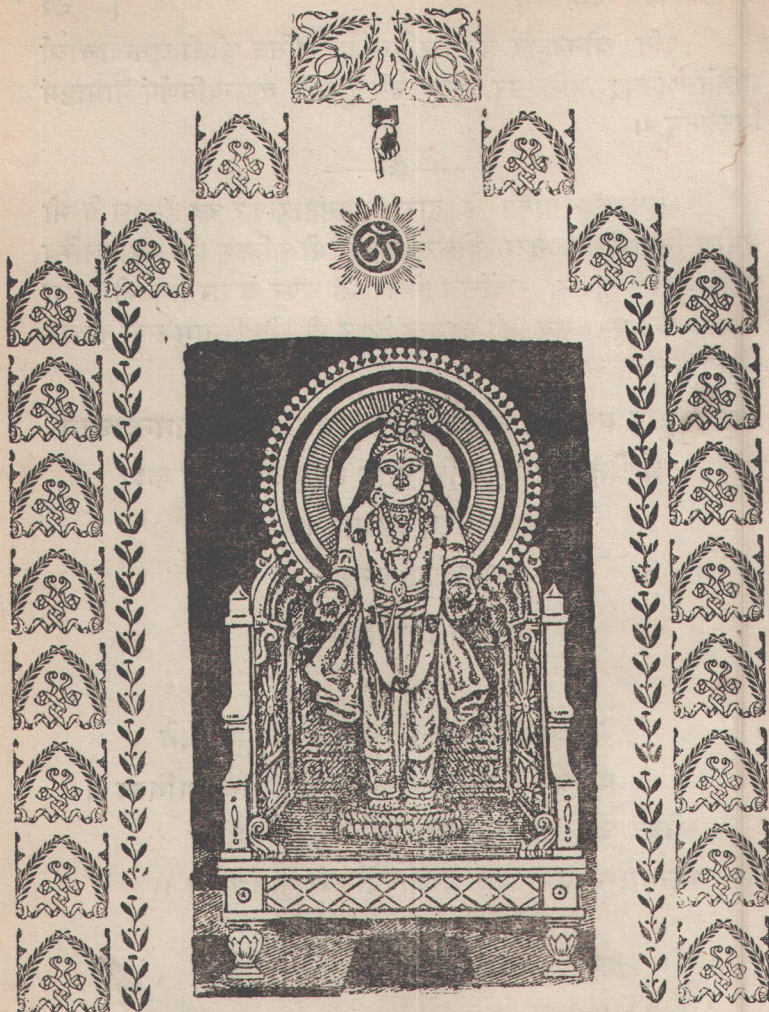
आनन्दलीलामयविग्रहाय हेमाभदिव्यच्छविसुन्दराय ।
तस्मै महाप्रेमरसप्रदाय चैतन्यचन्द्राय नमो नमस्ते ॥